



महावीर जयन्ती 2608

जैनविद्या

आचार्य प्रभाचन्द्र विशेषांक

जैनविद्या संस्थान

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी

राजस्थान

जैनविद्या

जैनविद्या संस्थान, श्री महावीरजी द्वारा प्रकाशित

वार्षिक

शोध-पत्रिका

मार्च, 2010

सम्पादक मण्डल

श्री नवीनकुमार बज
श्री महेन्द्रकुमार पाटनी
श्री अशोक जैन
डॉ. जिनेश्वरदास जैन
डॉ. प्रेमचन्द राँवका
डॉ. अनिल जैन

प्रबन्ध सम्पादक

श्री प्रकाशचन्द्र जैन
मंत्री, प्रबन्धकारिणी कमेटी
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी

सम्पादक

डॉ. कमलचन्द सोगाणी
श्री ज्ञानचन्द्र खिन्दूका

सहायक सम्पादक

सुश्री प्रीति जैन

प्रकाशक

जैनविद्या संस्थान

प्रबन्धकारिणी कमेटी

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी (राजस्थान)

वार्षिक मूल्य

30.00 रु. सामान्यतः

60.00 रु. पुस्तकालय हेतु

मुद्रक

जयपुर प्रिण्टर्स प्रा. लि.

जयपुर

विषय-सूची

क्र.सं.	विषय	लेखक का नाम	पृ.सं.
	प्रकाशकीय सम्पादकीय		
1.	आचार्य श्री प्रभाचन्द्र का व्यक्तित्व और कर्तृत्व	डॉ. गुलाबचन्द जैन	1
2.	पण्डित प्रभाचन्द्र	श्री रमाकान्त जैन	9
3.	जयतु प्रभेन्दु सूरि:	आचार्य राजकुमार जैन	19
4.	एक में अनेक : विराट व्यक्तित्व के धनी आचार्य प्रभाचन्द्र	डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल	33
5.	न्याय		48
6.	प्रभाचन्द्र नाम के कुछ जैन विद्वान	पण्डित कुन्दनलाल जैन	49
7.	प्रमाण, नय, प्रमाण और नय में अन्तर		60
8.	आचार्य प्रभाचन्द्र द्वारा प्रतिपादित प्रमाण : स्वरूप एवं विश्लेषण	डॉ. एच. सी. जैन	61
9.	प्रमाण के भेद, नय के भेद		68
10.	आचार्य प्रभाचन्द्र के ग्रन्थों में 'तर्क प्रमाण' की अवधारणा	डॉ. (सुश्री) राजकुमारी जैन	69
11.	आप्त का लक्षण		78
12.	परीक्षामुख एवं प्रमेयकमलमार्तण्ड में 'अनुमान' की अवधारणा	डॉ. राजवीरसिंह शेखावत	79
13.	आप्त का स्वरूप, आगम		106
14.	ख्यातिवाद : प्रमेयकमलमार्तण्ड के प्रकाश में	डॉ. वीरसागर जैन	107

जैनविद्या

(शोध-पत्रिका)

सूचनाएँ

1. पत्रिका सामान्यतः वर्ष में एक बार, महावीर जयन्ती के अवसर पर प्रकाशित होगी।
2. पत्रिका में शोध-खोज, अध्ययन-अनुसन्धान सम्बन्धी मौलिक अप्रकाशित रचनाओं को ही स्थान मिलेगा।
3. रचनाएँ जिस रूप में प्राप्त होंगी उन्हें प्रायः उसी रूप में प्रकाशित किया जाएगा। स्वभावतः तथ्यों की प्रामाणिकता आदि का उत्तरदायित्व रचनाकार का होगा।
4. यह आवश्यक नहीं कि प्रकाशक, सम्पादक लेखकों के अभिमत से सहमत हों।
5. रचनाएँ कागज के एक ओर कम से कम 3 सेण्टीमीटर का हाशिया छोड़कर सुवाच्य अक्षरों में लिखी अथवा टाइप की हुई होनी चाहिए।
6. अस्वीकृत/अप्रकाशित रचनाएँ लौटाई नहीं जायेंगी।
7. रचनाएँ भेजने एवं अन्य सब प्रकार के पत्र-व्यवहार के लिए पता-

सम्पादक

जैनविद्या

जैनविद्या संस्थान

दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी

सवाई रामसिंह रोड

जयपुर - 302 004

फोन नं. : 0141-2385247

ई-मेल : jainapa@sify.com

प्रकाशकीय

जैनविद्या संस्थान की शोधपत्रिका 'जैनविद्या' का यह अंक 'आचार्य प्रभाचन्द्र विशेषांक' के रूप में प्रकाशित कर अत्यन्त प्रसन्नता है।

भारतीय दर्शन में 'न्यायविद्या' का एक विशिष्ट स्थान है। जैनदर्शन-परम्परा में भी इसका अपना महत्वपूर्ण स्थान है। 'न्यायविद्या' अर्थात् वस्तु के सत्य स्वरूप को देखने-समझने की विद्या। किसी भी वस्तु, तथ्य, सिद्धांत, मान्यता की सत्यता-समीचीनता को जाँचने-परखने, उसकी निर्दोषता का निर्णय करने की कला है न्यायविद्या।

आचार्य प्रभाचन्द्र न्यायविद्या में निष्णात, खण्डन-मण्डन शैली में दक्ष, तर्कशास्त्र की बारीकियों के ज्ञाता, विलक्षण तार्किक, जैनदर्शन के मर्मज्ञ मनीषी थे। इन्होंने धर्म, दर्शन, अध्यात्म, तत्त्वमीमांसा-तर्कशास्त्र, न्यायशास्त्र, व्याकरण, आचारशास्त्र आदि विभिन्न विषयों से सम्बन्धित साहित्य सृजनकर अपनी विलक्षण-बुद्धि एवं वैदूष्य की छाप छोड़ी है।

आचार्य माणिक्यनन्दि द्वारा रचित न्यायविद्या के सूत्र ग्रन्थ 'परीक्षामुख' पर आचार्य प्रभाचन्द्र ने 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' नाम की 12,000 श्लोकप्रमाण वृहदाकार टीका लिखकर जैन वाङ्मय के भण्डार को अपूर्वता प्रदान की है। यह ग्रन्थ टीका-ग्रन्थ होते हुए भी मौलिक ग्रन्थ जैसा मान्य है, यह जैन न्याय का एक अद्वितीय, अपूर्व, अनूठा एवं अग्रगण्य ग्रन्थ है।

आचार्य प्रभाचन्द्र धारा नगरी के राजा भोज (10वीं श.ई.) के द्वारा सम्मानित तथा पूज्य थे। इन्होंने राजा भोज एवं उनके उत्तराधिकारी राजा जयसिंह के शासनकाल में विशाल साहित्य का निर्माण किया। स्पष्ट है कि आचार्य प्रभाचन्द्र का समय ग्यारहवीं शताब्दी ईसवी रहा है।

जिन विद्वान लेखकों की रचनाओं से यह अंक साकार हुआ उन सबके प्रति हम आभारी हैं।

पत्रिका के सम्पादक, सम्पादक मण्डल के सदस्य, सहयोगी सम्पादक - सभी धन्यवादार्ह हैं।

नरेशकुमार सेठी
अध्यक्ष

प्रकाशचन्द्र जैन
मंत्री

प्रबन्धकारिणी कमेटी,
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी

सम्पादकीय

“आचार्य प्रभाचन्द्र न्याय और व्याकरण के क्षेत्र में बहुचर्चित विद्वान रहे हैं। ये धारा नगरी के निवासी माने जाते हैं।”

“आचार्य प्रभाचन्द्र का समय ईस्वी सन् 980 से 1065 तक होना माना है।”

“आचार्य प्रभाचन्द्र विचक्षण बुद्धि के धनी थे। चहुँमुखी ज्ञान के बल पर ही आपने अनेक विषयों में अपनी लेखनी चलाई। चारों अनुयोगों में आपकी कृतियाँ पाई जाती हैं।”

“प्रथमानुयोग में - महापुराण-टिप्पणी, गद्य कथाकोष।

करणानुयोग में - तत्त्वार्थवृत्ति पद-विवरण, रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका।

द्रव्यानुयोग में - समयसार-टीका, प्रवचनसार-टीका, लघु द्रव्यसंग्रह वृत्ति, समाधितंत्र-टीका, आत्मानुशासन-टीका।

न्याय के विषय में - प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्र।

व्याकरण में - शब्दाम्भोजभास्कर, शाकटायन न्यास।

इन रचनाओं को देखने से जान पड़ता है कि प्रभाचन्द्र ने बहुमुखी ज्ञान प्राप्त किया था।”

“इसप्रकार आचार्य प्रभाचन्द्र के द्वारा रचित तेरह टीका ग्रन्थ एवं दो ग्रन्थ स्वोपज्ञ हैं। अर्थात् ‘न्यायकुमुदचन्द्र’ और ‘गद्य कथाकोश’ ये दो मौलिक रचनाएँ हैं, शेष तेरह टीका-ग्रन्थ हैं। ‘प्रमेयकमलमार्तण्ड’ टीका ग्रन्थ होते हुए भी मौलिक से कम नहीं।”

“‘प्रमेयकमलमार्तण्ड’ की रचना प्रभाचन्द्र ने धारानगरी में निवास करते हुए श्री भोजदेव के राज्य में समस्त प्रमाण-प्रमेय के स्वरूप को समझनेवाले ग्रन्थ ‘परीक्षामुख’ की टीका-स्वरूप की थी। ‘परीक्षामुख’ आचार्य माणिक्यनन्दि (लगभग 950-1050 ई.) का न्यायविषयक सूत्र ग्रन्थ है। प्रभाचन्द्र कृत उक्त टीका 12,000 श्लोक-प्रमाण बताई जाती है।”

“आचार्य प्रभाचन्द्र ने ‘प्रमेयकमलमार्तण्ड’ में अनेक सम्बद्ध विषयों पर विशद विवेचन किया है। उनमें निम्न विषय पठनीय/मननीय हैं - भूत चैतन्यवाद, सर्वज्ञत्व-विचार, ईश्वर कर्तृत्व विचार, मोक्षस्वरूप विचार, केवलिभुक्ति विचार, स्त्रीमुक्ति विचार, वेद-अपौरुषेयत्व विचार, नैयायिक-अभिमत सामान्य-स्वरूप विचार, ब्राह्मणत्व जातिनिरास, क्षणभंगवाद, वैशेषिक-अभिमत, आत्मद्रव्य विचार, जय-पराजय व्यवस्था आदि।”

“आचार्य प्रभाचन्द्र विशिष्ट प्रतिभा के धनी थे। वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान्, दार्शनिक और सिद्धान्त-शास्त्रों के ज्ञाता थे। उन्होंने प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्र जैसी प्रमेयबहुल कृतियों की रचना कर जैन-जैनेतर दर्शनों पर अपनी विशिष्टता एवं प्रामाणिकता सिद्ध की है। उन्होंने किसी भी विषय का समर्थन या खण्डन प्रचुर युक्तियों सहित किया है। वे तार्किक, दार्शनिक और सहृदय व्यक्तित्व के धनी रहे हैं। जैनागम की सभी विधाओं पर उनका पूर्ण अधिकार था। प्रभाचन्द्र का ज्ञान गंभीर और अगाध था। स्मरणशक्ति भी तीव्र थी। उन्होंने अपनी रचनाओं में पूर्ववर्ती जैनाचार्यों के अलावा भारतीय दर्शन के अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथ वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, महापुराण, वैयाकरण, सांख्ययोग, वैशेषिक-न्याय, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, बौद्ध दर्शन एवं श्वेताम्बर आदि के सैकड़ों ग्रन्थों के उद्धरण - सूक्तियाँ देकर अपने अगाध वैदूष्य का परिचय दिया है। प्रभाचन्द्र व्याकरण शास्त्र के भी विशिष्ट ज्ञाता थे। उन्हें पातंजल महाभाष्य का तलस्पर्शी ज्ञान था।”

“यद्यपि प्रभाचन्द्र नाम के एकाधिक विद्वानों, ग्रंथकारों, टिप्पणकर्ताओं, न्यास लेखकों ने जैन वाङ्मय परम्परा को ज्योतिर्मान किया है, तथापि अपने पाण्डित्य और वैदूष्य की जो अमिट छाप तर्क और न्याय विषय-प्रधान ग्रंथों - प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुमुदचन्द्र जैसे दुरूह ग्रंथ के रूप में पण्डित प्रभाचन्द्र ने छोड़ी है और अपनी विलक्षण प्रतिभा का जो परिचय अपने से पूर्ववर्ती गूढ़, दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं सैद्धांतिक ग्रंथों - शब्दाम्भोज भास्कर, शाकटायन व्यास, पंचास्तिकाय, तत्त्वार्थवृत्ति, समाधितन्त्र एवं क्रिया-कलाप पर भाष्य, टिप्पण, टीका लिखकर दिया है तथैव उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा संस्कृत गद्य के माध्यम से कथा जैसे ललित विषय पर भी अधिकारपूर्वक लिखने का कौशल प्रदर्शित किया है। ऐसे पण्डित प्रभाचन्द्र निश्चय ही अद्भुत क्षमतावाले प्रकाण्ड विद्वान् थे।”

‘जैनविद्या’ शोधपत्रिका का यह 24वाँ अंक इन्हीं आचार्य प्रभाचन्द्र पर आधारित विशेषांक है। जिन विद्वान् लेखकों ने अपनी रचना के द्वारा इस विशेषांक का कलेवर निर्माण किया, उनके प्रति आभारी हैं।

संस्थान समिति, सम्पादक मण्डल, सहयोगी सम्पादक एवं सहयोगी कार्यकर्ताओं के प्रति आभारी हैं।

मुद्रण हेतु जयपुर प्रिन्टर्स प्रा. लि. धन्यवादाहैं हैं।

डॉ. कमलचन्द सोगाणी

आचार्य श्री प्रभाचन्द्र का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

- डॉ. गुलाबचन्द्र जैन*



सामान्य परिचय

आचार्य प्रभाचन्द्र न्याय और व्याकरण के क्षेत्र में बहुचर्चित विद्वान् रहे हैं। ये धारा नगरी के निवासी माने जाते हैं। इनके विषय में निम्न टिप्पणी प्रसिद्ध है -

शार्दूलविक्रीडित छन्द

श्री धाराधिपभोजराज-मुकुट-प्रोताश्म-रश्मिच्छटा-
 च्छाया-कुंकुम-पंकलिप्त-चरणाम्भोजात-लक्ष्मीधवः ॥
 न्यायब्जाकरमण्डने दिनमणिः-शब्दाब्ज-रोदोमणि-
 स्थेयात् पण्डित-पुण्डरीक-तरणिश्रीमत्प्रभाचन्द्रमाः ॥

अनुष्टुप छन्द

श्री चतुर्मुख-देवानां शिष्योऽधृष्यः प्रवादिभिः ।
 पण्डित श्रीप्रभाचन्द्रो रुद्रवादि-गजांकुशः ॥

भावार्थ - उक्त छन्द की प्रथम दो पंक्तियाँ धारा नगरी के अधिपति राजा भोज की प्रशंसा में कही गई हैं। कैसे हैं वे? उनके मुकुट में लगे हुए रत्नों की छटा जब

* यह सूचित करते हुए दुःख है कि इस लेख के लेखक अब हमारे बीच विद्यमान नहीं हैं।

पृथ्वी पर गिरती है तो उसकी छाया से पृथ्वी केसर की शोभा को धारण करती है। उनकी शोभा ऐसी जान पड़ती है मानो लक्ष्मी के धव अर्थात् पति ही हों। आगे की शेष पंक्तियों में आचार्य प्रभाचन्द्र को न्यायरूपी सरोवर के आभूषण बतलाते हुए उनको प्रातःकालीन सूर्य की उपमा देते हुए कहा है - पण्डित श्री प्रभाचन्द्र न्यायरूपी कमलों को खिलानेवाले सूर्य हैं। उनको 'पण्डित' शब्द से सम्बोधित करने से उनका न्याय के विषय में परम पाण्डित्य प्रकट होता है। नीचे छन्द में कहा गया है कि आपके द्वारा चारों वेदों में निष्णात पण्डितों के वाद-विवाद हेतु आये शिष्यों को पराजित करने से जान पड़ता है कि आप रुद्र के समान वादीरूपी हाथियों पर अंकुश के समान हैं। कहने का तात्पर्य है कि आप वादियों पर विजय प्राप्त करनेवाले हैं।

धारा नगरी (जो आज मध्यप्रदेश में 'धार' के नाम से प्रसिद्ध है) में दसवीं शताब्दी में राजा भोज राज करते थे। वे तथा उनके उत्तराधिकारी स्वयं तो विद्वान थे ही, साथ ही विद्वानों का समादर भी खूब करते थे। इससे सिद्ध होता है कि प्रभाचन्द्र राजा भोज द्वारा सम्मानित भी थे और पूज्य भी थे। इनको 'पण्डित' शब्द से सम्बोधित करने से इनका गृहस्थ होना सिद्ध होता है। इनका राज-दरबार में जाना, वाद-विवाद में भाग लेना, पण्डित कहलाना और इनका गृह-त्यागी तथा नग्न दिगम्बर होना परस्पर विरुद्ध लगता है। उनका धारा में ही रहना भी दिगम्बर साधु की दृष्टि से संभव नहीं प्रतीत होता है। क्योंकि दिगम्बर जैन साधु एक स्थान में रहकर वहाँ के निवासी नहीं कहला सकते। इस विषय में एक तर्क यह भी है कि इन्होंने अपना गुरु आचार्य माणिक्यनन्दि को स्वीकार किया है जो कि मुनि अवस्था के पूर्व धारा के निवासी सिद्ध हो चुके हैं। प्रभाचन्द्र ने स्वयं लिखा है -

गुरुः श्री नन्दिमाणिक्यो नंदिताशेषसज्जनः ।

इससे सिद्ध है कि इनके गुरु माणिक्यनन्दि थे। किन्तु विद्या-गुरु थे। इन्होंने अपनी सारी रचनार्ये अपने गुरु के समक्ष रखीं और स्वीकृत कराई थीं।

दीक्षा गुरु

आपके शिक्षा-गुरु आचार्य माणिक्यनन्दि थे और दीक्षा-गुरु आचार्य 'पद्मनन्दि सैद्धान्तिक' थे। अविद्धकरण पद्मनन्दि कौमारदेव आपके सधर्मा थे। आचार्य कुलभूषण भी इनके सधर्मा थे।

समय

आचार्य प्रभाचन्द्र का समय इनके गुरु आचार्य माणिक्यनन्दि से जाना जाता है। आचार्य माणिक्यनन्दि ने न्याय के विद्वान आचार्य अकलंक का स्मरण किया है,

इससे जान पड़ता है कि आचार्य माणिक्यनन्दि आचार्य अकलंक के पश्चात् हुए हैं। आचार्य अकलंक का समय छठी-सातवीं शताब्दी ईस्वी के बीच का माना जाता है और आचार्य माणिक्यनन्दि का समय आठवीं शती सिद्ध हो चुका है। अतः आचार्य प्रभाचन्द्र नवीं-दशवीं शती के विद्वान् थे।

आचार्य प्रभाचन्द्र का समय पण्डित कैलाशचन्द्रजी ने ईसवी सन् 950 से 1020 और पण्डित महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य ने ईस्वी सन् 980 से 1065 तक होना माना है। आचार्य प्रभाचन्द्र के समय के विषय में और भी विवाद हैं किन्तु जो कुछ पण्डित कैलाशचन्द्रजी एवं पण्डित महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य के द्वारा सिद्ध किया गया है वह सर्वमान्य है।

कर्तृत्व

आचार्य प्रभाचन्द्र विचक्षण बुद्धि के धनी थे। चहुँमुखी ज्ञान के बल पर ही आपने अनेक विषयों में अपनी लेखनी चलाई। चारों अनुयोगों में आपकी कृतियाँ पाई जाती हैं, जैसे -

प्रथमानुयोग में - महापुराण-टिप्पणी, गद्य कथाकोष।

करणानुयोग में - तत्त्वार्थवृत्ति पद-विवरण, रत्नकरण्डश्रावकाचार-टीका।

द्रव्यानुयोग में - समयसार-टीका, प्रवचनसार-टीका, लघु द्रव्यसंग्रह-वृत्ति, समाधितंत्र-टीका, आत्मानुशासन-टीका।

न्याय के विषय में - प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्र।

व्याकरण में - शब्दाम्भोज भास्कर, शाकटायन न्यास।

इन सब रचनाओं को देखने से जान पड़ता है कि आपने बहुमुखी ज्ञान प्राप्त किया था। इतने ग्रंथों की टीकार्यें तथा मौलिक ग्रंथों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है ये कई आचार्यों के शिष्य और सधर्मा थे।

रचना परिचय

1. प्रमेयकमलमार्तण्ड - यह टीका-ग्रंथ है। यह ग्रंथ इनके गुरु आचार्य माणिक्यनन्दि द्वारा रचित 'परीक्षामुख-सूत्र' पर रची एक वृहत्काय टीका है। इसको टीका न कहकर मौलिक रचना ही कहना चाहिए। प्रमाण की कोटि में आनेवाले जितने ज्ञेय-पदार्थ हैं उनको कमलों की भाँति प्रकाशित करता है यह। ग्रंथ अथ से लेकर इति तक न्याय से भरा पड़ा है। पूर्व पक्ष में आनेवाले धुरंधर दार्शनिक अपने पक्ष का शालीनता से समाधान (न्याय की कसौटी से) पाकर निरुत्तर हो जाते हैं।

विभिन्न दार्शनिकों के मत में प्रमाण-स्वरूप में, उसकी संख्या में, उसके विषय में और उसके फल में विप्रतिपत्ति पाई जाती है। इसी प्रसंग में परीक्षामुख और प्रमेयरत्नमाला, प्रमेयरत्नालंकार, प्रमेयकण्ठिका आदि ग्रंथ रचे गये हैं। प्रमेयकमल मार्तण्ड उक्त प्रसंग को लेकर सबसे पहले रचा गया वृहत्काय ग्रंथ है। अन्य दार्शनिकों में नैयायिक कारक-साकल्य को प्रमाण मानते हैं, वैशेषिक सन्निकर्ष को, सांख्य इन्द्रिय-वृत्ति को, प्रभाकर (मीमांसा) ज्ञातृ-व्यापार को प्रमाण मानते हैं। बौद्ध निर्विकल्पक प्रत्यक्ष को प्रमाण मानते हैं, शब्दाद्वैतवादी प्रमाण को न मानकर सारे विश्व को ही शब्दमय मानते हैं, चार्वाकवादी अभाव को ही प्रमाण मानते हैं। शून्यवादी, ब्रह्मवादी सम्पूर्ण विश्व को ब्रह्ममय मानते हैं। प्रभाकर ज्ञान और आत्मा दोनों को परोक्ष मानते हैं। इस भाँति जैसे प्रमाण के स्वरूप में विप्रतिपत्ति है उसी प्रकार इसकी संख्या, विषय और उसके फल में भी विवाद है। प्रस्तुत ग्रंथ में उक्त सारे विवादों का खण्डन करके स्याद्वाद शैली के आधार पर जैन न्याय का मण्डन किया गया है। ग्रंथ की शैली सुलभ संस्कृत है, टीका का जो आधार होना चाहिए उसी के अनुरूप टीका रची गई है। ऐसा नहीं है कि शब्द तो कठिन और उसकी टीका उससे भी कठिन। टीका का शब्द से भी अधिक कठिन होना अच्छा नहीं होता। यह इस प्रकार की नहीं है। टीका अत्यन्त सुगम, तर्क-सम्मत और खण्डन-मण्डनपरक है।

इस ग्रंथ का विषय जैन न्याय है। न्याय को पढ़े बिना वस्तु-तत्त्व समझ में नहीं आ सकता। जैसे आत्मा को जानने के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण काम में नहीं आता क्योंकि आत्मा अमूर्त है, मूर्त-इन्द्रियों का विषय नहीं है तब अनुमान प्रमाण का सहारा लेना होगा या आगम प्रमाण का सहारा लेना होगा। इस प्रकार वस्तु-तत्त्व को जानने के लिए परोक्ष प्रमाण में श्रुति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम को जानना आवश्यक है। प्रत्यक्ष में पारमार्थिक और सांख्यव्यवहारिक प्रमाण को जानना आवश्यक है। उक्त ग्रंथ इन सब प्रमाणों को, उसके भेदों को और विषय और फल को पर्याप्त खण्डन-मण्डन के साथ सिद्ध करता है।

2. **न्यायकुमुदचन्द्र** - यह ग्रंथ न्यायरूपी कुमुदों (कमल-पुष्पों) को खिलाने में/के लिए चन्द्रमा है। इस विषय में आचार्य जयसेन ने आचार्य प्रभाचन्द्र की प्रशंसा में एक श्लोक लिखा है, उसमें कहा कि न्याय के विषय में अनेक विप्रतिपत्तियाँ आया करती हैं, उनको सुलझाने में, उनको स्पष्ट करने में यह ग्रंथ चन्द्रमा के समान है।

3. **तत्त्वार्थवृत्ति पद-विवरण** - इस ग्रंथ में आचार्य उमास्वामी-कृत 'तत्त्वार्थसूत्र' की आचार्य पूज्यपाद द्वारा रचित वृहत् टीका 'सर्वार्थसिद्धि' पर आचार्य

प्रभाचन्द्र ने पदच्छेद करने का कार्य किया है। इससे उसको समझने में सरलता आ जाती है।

4. शब्दाम्भोज भास्कर - यह ग्रंथ आचार्य पूज्यपाद द्वारा रचित 'जैनेन्द्र व्याकरण' पर रची हुई 'भास्कर वृत्ति' है। यह शब्द-सिद्धिपरक व्याकरण ग्रंथ है। यह व्याकरण में आये हुए शब्दों की सिद्धि करने में सूर्य के समान होने से यथानाम तथागुण है। यह ग्रंथ इनको प्रमुख वैयाकरण सिद्ध करता है।

5. प्रवचनसार-सरोज भास्कर - यह ग्रंथ आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित ग्रंथ 'प्रवचनसार' को सरोज की उपमा देकर उस पर रची अपनी टीका को भास्कर (सूर्य) के सदृश प्रकट करनेवाला है।

6. समयसार टीका - यह आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित ग्रंथ समयसार की टीका है। कहते हैं जिन गाथाओं का स्पष्टीकरण आचार्य अमृतचन्द्र ने नहीं किया उनकी टीका आचार्य प्रभाचन्द्र ने की है। इससे सिद्ध होता है कि इनकी अध्यात्म में भी रुचि थी।

7. पंचास्तिकाय-प्रदीप - यह ग्रंथ भी आचार्य कुन्दकुन्द की मूलकृति 'पंचास्तिकाय' पर टीकास्वरूप रचा गया है। यह जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश इन पाँचों अस्तिकायों पर उसी प्रकार प्रकाश डालता है जिस प्रकार दीपक वस्तु पर प्रकाश डालता है।

8. लघु द्रव्यसंग्रह वृत्ति - यह आचार्य नेमिचन्द्र सैद्धान्तिकदेव द्वारा प्राकृत भाषा में 58 गाथाओं में रचित 'द्रव्य-संग्रह' पर टीकास्वरूप वृत्ति है।

9. महापुराण-टिप्पणी - महापुराण आचार्य जिनसेन द्वारा रचित महाकाव्य ग्रंथ है। इस पर प्रभाचन्द्र ने टीका की है।

10. रत्नकरण्ड श्रावकाचार की टीका - यह ग्रंथ आचार्य समन्तभद्र द्वारा रचित 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' की टीका है। पहले यह संस्कृत टीका आचार्य प्रभाचन्द्र द्वारा रचित नहीं मानी जाती थी। किन्तु पण्डित कैलाशचन्द्रजी तथा उनके सहयोगियों ने सिद्ध कर दिया है कि यह टीका आचार्य प्रभाचन्द्र द्वारा ही रची गई है। टीका अत्यन्त सरल एवं सुबोध संस्कृत में लिखी गयी है। इसकी हिन्दी टीका पण्डित पन्नालालजी साहित्याचार्य ने की है। इस ग्रंथ में 150 संस्कृत श्लोक हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान एवं सम्यक्-चरित्र का वर्णन श्रावकों के हितार्थ रचा गया है। ग्रंथ में 70 अतीचारों तथा 11 प्रतिमाओं की भी सुगम व्याख्या की गई है।

11. **समाधितंत्र टीका** - यह मूल ग्रंथ संस्कृत भाषा में 105 श्लोक में निबद्ध है। इसके मूलकर्ता आचार्य पूज्यपाद हैं जिनका अपर नाम देवनन्दि है। इसकी सुगम टीका आचार्य प्रभाचन्द्र ने की है। सारे छंद वैराग्यपूर्ण एवं आत्मा-विषयक हैं। बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का स्वरूप भी आगम-सम्मत है। टीका सरल संस्कृत गद्यात्मक है।

12. **आत्मानुशासन टीका** - इसके मूलकर्ता आचार्य गुणभद्र हैं। इन्होंने महापुराण और जयधवला का अधूरा काम पूरा किया। ये आचार्य जिनसेन के पट्ट शिष्य थे। आत्मानुशासन संस्कृत भाषा में शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, पृथ्वी, अनुष्टुप, आर्या आदि विभिन्न छन्दों में रचा गया है। अध्यात्म-प्रेमी होने से आचार्य प्रभाचन्द्र ने अध्यात्म ग्रंथों की भी टीका की है।

13. **शाकटायन न्यास** - शाकटायन एक विश्रुत जैन वैयाकरण हुए हैं। ग्रंथकर्ता ने पाणिनी और जैनेन्द्र व्याकरण के अनुरूप ही 3200 सूत्र-प्रमाण व्याकरण की रचना की है। इसी पर आचार्य प्रभाचन्द्र ने सरल एवं सुगम न्यास लिखा है। न्यास एक प्रकार की टीका ही है।

14. **क्रियाकलाप** - ग्रंथ एक संकलित रचना है। इसे पण्डित पन्नालालजी सोनी शास्त्री ने संकलित किया है। इसमें सिद्ध भक्ति, आचार्य भक्ति आदि भक्तियों, सामायिक पाठ तथा साधु एवं श्रावकों के करने योग्य क्रियाओं का संकलन है। पन्नालालजी ने लिखा है कि इस संकलन में जो प्राकृत भाग है वह आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा भक्ति के रूप में रचा गया है तथा सामायिक पाठ, जो आचार्य पूज्यपाद द्वारा रचे गये हैं उनकी टीका आचार्य प्रभाचन्द्र की जान पड़ती है। सामायिक पाठों में सर्वप्रथम णमोकार एवं चत्तारि मंगलादि पाठ पढ़ा जाता है, उसकी संस्कृत टीका बड़ी सुन्दर है, गद्यात्मक है, वह आचार्य प्रभाचन्द्र की ही जान पड़ती है।

15. **गद्यात्मक कथाकोष** - ईस्वी सन् 950 से सन् 1020 के बीच वृहत् संस्कृत श्लोकबद्ध कथा की रचना आचार्य हरिषेण ने की थी। इसमें 157 कथायें निबद्ध हैं। यथासंभव इसी रचना से प्रभावित होकर आचार्य प्रभाचन्द्र ने गद्यात्मक कथा-कोष की रचना की हो। यह एक गद्यात्मक शास्त्रसम्मत तथा पुराणसम्मत ग्रंथ है। भाषा-शैली सरल संस्कृत है।

इस प्रकार आचार्य प्रभाचन्द्र के द्वारा रचित 13 टीकाग्रंथ एवं दो ग्रंथ स्वोपज्ञ हैं। अर्थात् 'न्यायकुमुदचन्द्र' और 'गद्य कथाकोष' ये दो मौलिक रचनायें हैं, शेष 13

टीका-ग्रन्थ हैं। 'प्रमेयकमल मार्तण्ड' टीका-ग्रंथ होते हुए भी मौलिक से कम नहीं है। पूर्व पक्ष में आनेवाले दार्शनिकों ने 'प्रमेयकमल मार्तण्ड' के कर्ता का लोहा माना और अपना पक्ष छोड़ स्याद्वाद को स्वीकार किया है।

उपसंहार - यद्यपि आचार्य प्रभाचन्द्र ने अपने जन्म-स्थान के विषय में कुछ नहीं लिखा और न किसी शिलालेख से उनके जन्मस्थान का ज्ञान होता है। किन्तु एक टिप्पणी से विदित होता है कि वे स्थायीरूप से धारा नगरी के निवासी थे। यथा -

“स्थेयात् पण्डित पुण्डरीक तरणिः श्रीमान प्रभाचन्द्रमा”

इससे विदित होता है कि इनका स्थायी निवास धारानगरी था। ये राजा भोज द्वारा सम्मानित एवं पूज्य थे। इनको पण्डित कहा गया है। इससे इनका गृहस्थ होना सिद्ध होता है क्योंकि दिगम्बर साधु को कोई पण्डित नहीं कहता। इसके अतिरिक्त 'आत्मानुशासन' आदि महान ग्रंथों के कर्ता आचार्य गुणभद्र ने इनकी कृति 'न्यायकुमुदचन्द्र' पर एक श्लोक लिखकर इनको कवि एवं पण्डित कहा है, इससे भी इनका गृहस्थ-पण्डित होना सिद्ध होता है। इस विषय में एक राय यह भी है कि पण्डित शब्द विद्वान का द्योतक है, अतः इस शब्द मात्र से इनको गृहस्थ पण्डितों की कोटि में नहीं गिना जा सकता। किन्तु टिप्पणकार ने 'स्थेयात्' शब्द का प्रयोग किया है। इससे इनका धारा में स्थिर होना जान पड़ता है। चूंकि दिगम्बर साधु एक स्थान पर अधिक नहीं रहते। तीसरी बात यह भी है इनके विद्या-गुरु जिनसे कि इन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है वे धारा नगरी के थे, ऐसा सिद्ध हो चुका है। धारा में आचार्य माणिक्यनन्दि से शिक्षा प्राप्त कर आप आचार्य पद्मनन्दि के नन्दिसंघ बलात्कार गण में दीक्षित हो गए हैं, इसमें विवाद नहीं हो सकता। श्रवणवेलगोला के शिलालेख के अनुसार आप नन्दिसंघ बलात्कार गण के आचार्यों की पट्टावलि के आचार्य हैं। आपके गुरु आचार्य पद्मनन्दि इसी संघ के थे।

आप द्वारा रची गई टीका-रचना 'प्रमेयकमल मार्तण्ड' जैन-न्याय में मूर्धन्य स्थान रखती है। यह 'शास्त्री', 'न्यायतीर्थ' एवम् 'आचार्य' तक की उच्च कक्षाओं के पाठ्यक्रमों के लिए स्वीकृत है। ग्रन्थ में प्रमाण का स्वरूप, उसके भेद - प्रत्यक्ष एवं परोक्ष को तथा इनके आभासों को युक्तिपूर्वक समझाया है। स्मृति, प्रत्यक्ष, तर्क, आगम और अनुमान तथा इनके भेद और प्रतिपक्ष प्रमाण को सयुक्तिक समझाया है। इन पाँचों

की व्याख्या में प्रायः सारा ग्रंथ समाहित है। 'परीक्षामुख' के प्रथम सूत्र 'स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाणम्' के आधार से ज्ञान को ही प्रमाण सिद्ध किया है।

भूतपूर्व प्राचार्य
श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत कॉलेज
जयपुर



प्रस्तुत परीक्षामुख ग्रंथ को पढ़ने और पढ़ानेवालों और इस पर उपाधियाँ प्राप्त करनेवालों की संख्या बहुत हो सकती है। न्यायतीर्थ, शास्त्री और आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण विद्वान इसके अध्येता रह चुके हैं; बंगाल एसोसियेशन की न्यायतीर्थ परीक्षा में उत्तीर्ण विद्वान भी अनेक हैं। किन्तु किसी ने इनके ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद करने या करवाने की ओर ध्यान नहीं दिया। अंतरंग में चाहे इस ग्रंथ को पढ़नेवालों की जिज्ञासा भी इसके हिन्दी अनुवाद की रही होगी किन्तु किसी ने आगे आकर इसके अनुवाद का बीड़ा नहीं उठाया।

पूज्य आर्यिका गणिनी ज्ञानमतीजी माताजी की शिष्या जिनमतीजी ने गुरुदेव पण्डित चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ (भू.पू. प्राचार्य, श्री दिगम्बर जैन संस्कृत कॉलेज, जयपुर) से यह ग्रंथ पढ़ते समय निवेदन किया था कि - 'आप इस ग्रंथ की हिन्दी टीका लिखिए।' मैंने भी शास्त्री कक्षा में पढ़ते समय कहा था कि - 'इस ग्रंथ की हिन्दी टीका आप कर सकते हैं, अतः आपको यह उत्तम कार्य करना चाहिए। आप स्वयं यह ग्रंथ पढ़ाकर अनेक छात्र-छात्राओं को न्यायतीर्थ की डिग्रियाँ प्राप्त करा चुके हैं, आपके लिए यह कार्य आसान है,' किन्तु यह संभव नहीं हो पाया। आर्यिका जिनमतीजी ने अपनी शिक्षागुरु आर्यिका ज्ञानमतीजी तथा अनेक पंडितों के सहयोग से इस महान ग्रंथराज की टीका की है। माताजी संस्कृत-प्राकृत की अच्छी विदुषी हैं, न्याय के विषय का गूढ़ ज्ञान रखती हैं। ग्रंथ की समाप्ति किशनगढ़ (राजस्थान) में हुई। उन्होंने इस पर दो शब्द लिखने हेतु मुझको भी बुलाया था। मैंने अपने दो शब्द लिखकर अपने को धन्य माना। मैं पूज्या माताजी को कोटिशः धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ कि उन्होंने इस महान ग्रंथ की हिन्दी टीका की, जिसका अभी तक अभाव था।

पण्डित प्रभाचन्द्र

- श्री रमाकान्त जैन*



कर्णाटक में श्रवणबेलगोल में चन्द्रगिरि पर्वत पर कत्तिले बस्ती के दक्षिणी भाग में एक चतुर्मुख स्तम्भ है। उस स्तम्भ पर शक संवत् 1022 (1100 ई.) का एक लेख उत्कीर्ण है, जिसमें विभिन्न आचार्यों आदि की प्रशस्ति अंकित है। वह लेख 'जैन शिलालेख संग्रह' (प्रथम भाग) में लेख सं. 55 (69) के अन्तर्गत पृष्ठ 115-122 पर उद्धृत है। उस स्तम्भ-लेख के दक्षिणी मुख पर श्लोक 17-18 में पण्डित प्रभाचन्द्र की प्रशस्ति निम्नवत की गई है -

श्रीधाराधिप भोजराज-मुकुट-प्रोताश्म-रश्मि-च्छटा-
 च्छाया-कुङ्कुम-पङ्क-लिप्त-चरणाम्भोजात-लक्ष्मीधवः ।
 न्यायाब्जाकरमण्डने दिनमणिश्शब्दाब्ज-रोदोमणि-
 स्थेयात्पण्डित-पुण्डरीक-तरणिश्रीमान्प्रभाचन्द्रमाः ॥17 ॥
 श्री चतुर्मुख-देवानां शिष्योऽधृष्यः प्रवादिभिः ।
 पण्डित श्री प्रभाचन्द्रो रुद्रवादि-गजाङ्कुशः ॥18 ॥

* यह सूचित करते हुए दुःख है कि इस लेख के लेखक अब हमारे बीच विद्यमान नहीं हैं।

इसका भावार्थ है कि श्री धाराधीश भोजराज के मुकुट में जड़ी मणियों की रश्मियों की कान्ति से जिनके चरण-कमलों की श्री कस्तूरी-चन्दन लेप के समान भासित होती थी (अर्थात् जिनके चरणों में मणिजटित मुकुटधारी धारा-नरेश भोजराज नमस्कार करते थे), जो न्यायरूपी कमलसमूह को मण्डित करनेवाले दिनमणि (मार्तण्ड) थे (अर्थात् जो प्रमेयकमल मार्तण्ड के रचयिता थे), जो शब्दाब्ज (शब्दरूपी कमलों) को विकसित करनेवाले रोदोमणि (भास्कर) थे (अर्थात् जिन्होंने शब्दाम्भोजभास्कर की रचना की थी) और जो पण्डित-पुण्डरीकों (पण्डितरूपी कमलों) को प्रफुल्लित करनेवाले तरणि (सूर्य) थे ऐसे श्रीमान् प्रभाचन्द्र चिरजीवी हों अर्थात् उनका यश अक्षुण्ण रहे। श्री चतुर्मुख देवों के शिष्य, प्रवादियों द्वारा अविजित, रुद्रवादि गर्जों पर अंकुश रखनेवाले श्री प्रभाचन्द्र पण्डित थे।

धारानरेश भोजराज का राज्यकाल सन् 1010 से 1053 ई. तक रहा था। अतः ऊपर स्तम्भलेख में उल्लिखित पण्डित प्रभाचन्द्र ने 'प्रमेयकमल मार्तण्ड' और 'शब्दाम्भोज भास्कर' कृतियों का प्रणयन इस अवधि में किसी समय किया होगा, ऐसा अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

उक्त चन्द्रगिरि पर्वत पर महनवमी मण्डप में लगे चतुर्मुख स्तम्भ पर शक संवत् 1085 (1163 ई.) का एक लेख उत्कीर्ण है जो जैन शिलालेख संग्रह (प्रथम भाग) में लेख सं. 39 (63) और 40 (64) के रूप में पृष्ठ 21-30 पर समाहित है। उस स्तम्भ के पश्चिमी मुख पर उत्कीर्ण लेख के श्लोक संख्या 13-16 से विदित होता है कि मूलसंघान्तर्गत नन्दिगण के प्रभेदरूप देशीगण में एक प्रसिद्ध मुनिराज गोल्लाचार्य हुए थे और उनके शिष्य अविद्धकर्ण (जिनके कान नहीं बिंधे हुए थे), कौमारदेवव्रती (जो कुमारावस्था से ही व्रती थे) और ज्ञानविधि (ज्ञान के सागर थे) ऐसे पद्मनन्दि सैद्धान्तिक थे। और उन पद्मनन्दि सैद्धान्तिक के शिष्य सिद्धान्त-सागर-पारंगत कुलभूषण नाम से यति तथा उनके सधर्मा श्री कुण्डकुन्दान्वय के मुनिराज पण्डितवर प्रभाचन्द्र थे जो 'शब्दाम्भोरुहभास्कर' के कर्ता प्रथिततर्क ग्रन्थकार थे। उक्त स्तम्भलेख में आगे उक्त कूलभूषण मुनि की शिष्य-परम्परा आदि का तो उल्लेख है, किन्तु प्रभाचन्द्र की परम्परा का नहीं।

तत्त्वार्थवृत्तिपद, न्यायकुमुदचन्द्र और क्रियाकलाप टीका की प्रशस्तियों में भी उनके कर्ता प्रभाचन्द्र ने अपने को श्री पद्मनन्दि सैद्धान्तिक का शिष्य सूचित

किया है, किन्तु प्रमेयकमल मार्तण्ड की प्रशस्ति के निम्नलिखित पद्यों में उसके रचयिता पण्डित प्रभाचन्द्र ने श्री माणिक्यनन्दि की गुरुरूप में वंदना करते हुए अपने को श्री पद्मनन्दि सैद्धान्तिक का शिष्य और रत्ननन्दि के चरणों में रत बताया है -

गुरुः श्रीनन्दिमाणिक्यो नन्दिताशेषसज्जनः ।

नन्दिताददुरितैकान्तरजा जैनमतार्णवः ॥3॥

श्रीपद्मनन्दि सैद्धान्तशिष्योऽनेकगुणालयः ।

प्रभाचन्द्रश्चिरं जीयात् रत्ननन्दिपदेरतः ॥4॥

और प्रशस्ति के श्लोक 1 में उक्त ग्रंथ के प्रणयन हेतु माणिक्यनन्दि का आभार निम्नवत व्यक्त किया है -

गम्भीरं निखिलार्थगोचरमलं शिष्यप्रबोधप्रदं

यद्व्यक्तं पदमद्वितीयमखिलं माणिक्यनन्दिप्रभोः ।

तद्व्याख्यातमदो यथावगतः किञ्चिन्मयालेशतः

स्थेयाच्छुद्धधियां मनोरतिगहे चन्द्रार्कतारावधि ॥1॥

और पुष्पिका वाक्य में ग्रन्थ-रचना के समय, स्थान और विषय को निम्नवत निर्दिष्ट किया है -

“श्री भोजदेवराज्ये श्रीमद्भारानिवासिना परापरपरमेष्ठिपदप्रणामार्जिता-
मलपुण्यनिराकृतनिखिलमलकलङ्केन श्रीमत्प्रभाचन्द्रपण्डितेन निखिलप्रमाण-
प्रमेयस्वरूपोद्योतपरीक्षामुखपदमिदं विवृतमिति ।”

इससे स्पष्ट है कि ‘प्रमेयकमलमार्तण्ड’ की रचना प्रभाचन्द्र पण्डित ने धारानगरी में निवास करते हुए श्री भोजदेव के राज्य में समस्त प्रमाण-प्रमेय के स्वरूप को समझानेवाले ग्रन्थ ‘परीक्षामुख’ की टीका-स्वरूप की थी। ‘परीक्षामुख’ उक्त माणिक्यनन्दि (लगभग 950-1050 ई.) का न्याय विषयक सूत्र-ग्रन्थ है। प्रभाचन्द्र कृत उक्त टीका 12,000 श्लोक-प्रमाण बताई जाती है। कालान्तर में चारुकीर्ति ने उस पर अपना भाष्य ‘प्रमेयरत्नमालालंकार’ नाम से रचा और उसमें प्रभाचन्द्र सूरी और उनकी उक्त कृति तथा माणिक्यनन्दि का सादर स्मरण निम्नवत किया -

जयतु प्रभेन्दुसूरिः प्रमेयकमलप्रकाण्डमार्त्तण्डेन ।

यद्वदननिस्सृतेन प्रतिहतमखिलं तमो हि बुधवर्गाणाम् ॥

* * *

माणिक्यनन्दिरचितं क्वनुसूत्रवृन्दं
क्वाल्पीयसी मम मतिस्तु तदीय भक्त्या ।
तादृक् प्रभेन्दुवचसां परिशीलनेन ।
कुर्वे प्रभेन्दुमधुना बुधहर्षकन्दम् ॥

पण्डित प्रभाचन्द्र की कृति 'शब्दाम्भोजभास्कर' अपरनाम 'शब्दाम्भोरुहभास्कर' के अब तीन-साढ़े तीन अध्याय उपलब्ध बताये जाते हैं। यह कृति देवनन्दि पूज्यपाद (464-524 ई.) के व्याकरण ग्रन्थ 'जैनेन्द्र महान्यास' पर आधारित बताई जाती है।

'तत्त्वार्थवृत्तिपद' गृद्धपिच्छाचार्य उमास्वाति (40-90 ई.) के 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' पर देवनन्दि पूज्यपाद की 'तत्त्वार्थवृत्ति' के विषम पदों का संक्षिप्त अर्थसूचक टिप्पण ग्रन्थ है।

'न्यायकुमुदचन्द्र' भट्ट अकलंकदेव (625-675 ई.) द्वारा प्रमाणप्रवेश, नयप्रवेश और प्रवचनप्रवेश नामक न्याय विषयक तीन प्रकरणों को लेकर रची गई कृति 'लघीयस्त्रय' और उसकी स्वोपज्ञविवृति (स्वरचित टीका) पर रचा गया न्याय-विषयक विशद व्याख्यान है। ग्रन्थ का पुष्पिका-वाक्य निम्नवत है -

“श्री जयसिंहदेवराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना परापरपरमेष्ठि-
प्रणामोपार्जितामलपुण्यनिराकृतनिखिलमकलंकेन श्रीमत्प्रभाचन्द्रपण्डितेन
न्यायकुमुदचन्द्रो लघीयस्त्रयालंकारः कृतः इति मंगलम्।”

इससे विदित होता है कि इस ग्रन्थ की रचना पण्डित प्रभाचन्द्र ने धारा नगरी में श्री जयसिंहदेव (1053-1060 ई.) के राज्यकाल में की थी।

'न्यायकुमुदचन्द्र' की प्रशस्ति में आये इस पद्य -

“अभिभूय निजविपक्षं निखिलमतोद्योतनो गुणाम्बोधिः ।
सविता जयतु जिनेन्द्रः शुभ प्रबन्धः प्रभाचन्द्रः ॥”

से विदित होता है कि उन्होंने एक 'प्रबन्ध' की भी रचना की थी। 'आराधना सत्कथाप्रबन्ध' नाम से उपलब्ध कृति, जो एक गद्यकथाकोश है, की प्रशस्ति में

भी पण्डित प्रभाचन्द्र ने ऊपर अंकित प्रशस्ति के अनुरूप उसकी रचना धारा नगरी में रहते हुए श्री जयसिंहदेव के राज्यकाल में किये जाने की बात लिखी है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस कथाप्रबन्ध की रचना 'न्यायकुमुदचन्द्र' की रचना के पूर्व हो चुकी थी।

'क्रियाकलाप टीका' प्रभाचन्द्र ने अपने गुरु पद्मनन्दि सैद्धान्तिक की कृति 'क्रियाकलाप' पर रची थी।

हुम्मच के पद्मावती मन्दिर के प्रांगण में एक शिलाखण्ड पर, बिना काल-निर्देश का, एक लेख उत्कीर्ण मिला है जो जैन शिलालेख संग्रह (तृतीय भाग) में लेख सं. 667 के अन्तर्गत पृष्ठ 514-529 पर संकलित है। लेख प्रारंभ में कन्नड़ में तथा तदनन्तर संस्कृत में निबद्ध है। लेख को पढ़ने से ऐसा विदित होता है कि वह विजयनगर सम्राट कृष्णदेवराय के राज्यकाल (1509-1530 ई.) में हुए प्रसिद्ध वादी विद्यानन्द स्वामी के निलय में आयोजित कल्याण-पूजा-उत्सव पर स्वामीजी के शिष्य देवेन्द्रकीर्ति और उनके शिष्य वर्द्धमान मुनि द्वारा स्वामीजी को प्रशस्तिस्वरूप लिखाया और उत्कीर्ण कराया गया था। उक्त शिलालेख में स्वामीजी और उनके उपर्युक्त शिष्यों के उल्लेख के अतिरिक्त कई अन्य तत्कालीन एवं पूर्वज आचार्यों-विद्वानों आदि को भी स्मरण किया गया है। लुइस राइस ने लेख का समय 1530 ई. अनुमानित किया है। उक्त लेख में उपर्युक्त माणिक्यनन्दि और प्रभाचन्द्र का उल्लेख भी निम्नवत मिलता है -

माणिक्यनन्दी जिनराज-वाणी-प्राणाधिनाथः पर वादि-मद्धीं ।

चित्रं प्रभाचन्द्र इह क्षमायाम मार्त्तण्ड-वृद्धौ नितरां व्यदीपित् ॥

सुखी...न्यायकुमुद चन्द्रोदय-कृते नमः ।

शाकटायन-कृत्सूत्र न्यास-कर्त्रे व्रतीन्दवे ॥

इससे विदित होता है कि व्रती प्रभाचन्द्र की 'प्रमेयकमलमार्त्तण्ड' और 'न्यायकुमुदचन्द्र' के साथ-साथ वैयाकरण शाकटायन द्वारा रचित व्याकरण सम्बन्धी सूत्रों पर कोई न्यास रचने की भी ख्याति रही थी। वैयाकरण शाकटायन राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष के राज्यकाल (815-877 ई.) में हुए थे।

उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त विवेच्य पण्डित प्रभाचन्द्र को आचार्य कुन्दकुन्द (ई.पू. 8-44) के 'पंचत्थिपाहुण'(पंचास्तिकाय) पर 'पंचास्तिकायप्रदीप' और 'प्रवचनसार' पर 'प्रवचनसार-सरोजभास्कर', आचार्य समन्तभद्र (लगभग 120-185 ई.) रचित

‘रत्नकरण्ड श्रावकाचार’ पर ‘रत्नकरण्डश्रावकाचार-टीका’, देवनन्दि पूज्यपाद के ‘समाधितन्त्र’ पर ‘समाधितन्त्र-टीका’, आदिपुराणकार जिनसेन (770-850 ई.) के शिष्य गुणभद्र द्वारा रचित ‘आत्मानुशासन’ पर ‘आत्मानुशासनतिलक’ नामक टिप्पण और पुष्पदंत के महापुराण (965 ई.) पर ‘महापुराण-टिप्पण’ रचने का भी श्रेय दिया जाता है। चूंकि प्रभाचन्द्र नाम के अनेक विद्वान-आचार्य हुए हैं, अतः यह गवेषणा का विषय है कि क्या उपर्युल्लिखित सभी कृतियों के रचयिता ‘प्रमेयकमलमार्तण्ड’ के कर्ता पण्डित प्रभाचन्द्र ही हैं?

‘पंचास्तिकायप्रदीप’ और ‘समाधितन्त्र-टीका’ (समाधिशतक टीका) में रचनाकार ने ‘प्रमेयकमलमार्तण्ड’, ‘न्यायकुमुदचन्द्र’ और ‘आराधना-सत्कथा-प्रबन्ध’ की भाँति अपने नाम के साथ ‘पण्डित’ विशेषण का प्रयोग किया है, अतः इनके रचनाकार एक ही प्रभाचन्द्र प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार ‘समाधितन्त्र-टीका’ से शैलीगत साम्य तथा ‘आराधना-सत्कथा-प्रबन्ध’ में पायी जानेवाली कथाओं से साम्य के आधार पर ‘रत्नकरण्डश्रावकाचार-टीका’ के कर्ता भी उक्त पण्डित प्रभाचन्द्र प्रतीत होते हैं।

हमें ऐसा प्रतीत होता है कि विवेच्य पण्डित प्रभाचन्द्र मूलतः दक्षिण भारत के निवासी थे और वहीं वे कूलभूषण यति के साथ अविद्धकर्ण, कौमारदेवव्रती, ज्ञाननिधि पद्मनन्दि सैद्धान्तिक के शिष्य बने, किन्तु कालान्तर में उत्तर की ओर विहार कर धारा नगरी में जा बसे जहाँ ‘परीक्षामुख’ के रचयिता माणिक्यनन्दि के सम्पर्क में आये और उनसे न्याय-विषयक ज्ञान अर्जित कर उन्हें भी अपना गुरु माना।

‘सुदंसणचरित’ और ‘सकलविधि-विधान-काव्य’ के रचयिता नयनन्दी भी उक्त माणिक्यनन्दि के शिष्य थे। उन्होंने अपने ‘सकलविधि-विधान-काव्य’ में अपने गुरु के साथ-साथ अपने सह-अध्यायी प्रभाचन्द्र का भी स्मरण किया है, इससे लगता है वे भी इनकी प्रतिभा से प्रभावित थे। अपने ‘प्रमेयकमलमार्तण्ड’ में प्रभाचन्द्र ने अपने को रत्ननन्दि के चरणों में भी रत बताया है। ये रत्ननन्दि कौन थे और कहाँ व कैसे प्रभाचन्द्र के गुरु बने, यह स्पष्ट नहीं है। प्रभाचन्द्र द्वारा अपने कृतियों में अपने नाम के साथ ‘पण्डित’ विशेषण लगाने से ऐसा भासित होता है कि वे एक गृहस्थ विद्वान थे और उन्होंने अपनी अधिकतर कृतियों का प्रणयन धारा नगरी में निवास करते हुए धारा- नरेश भोजराज और जयसिंहदेव के राज्यकाल में किया था। चारुकीर्ति कृत ‘प्रमेयरत्नमालालंकार’ में

उन्हें 'प्रभेन्दुसूरिः' उल्लिखित किये जाने से लगता है कि संभव है उन्होंने कालान्तर में मुनि-दीक्षा ग्रहण कर ली हो और जिन कृतियों में पण्डित विशेषण का प्रयोग नहीं है वे उनकी दीक्षा के उपरान्त की कृतियाँ हों। 'आत्मानुशासनतिलक' के अन्त में 'प्रभाचन्द्राचार्यविरचित' तथा 'प्रवचनसार-सरोजभास्कर' के अन्त में 'इति श्री प्रभाचन्द्रदेव विरचिते' अंकित पाया जाता है। यह भी संभव है कि ये रचनार्ये किन्हीं अन्य प्रभाचन्द्र की हों। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'जैनग्रन्थ-प्रशस्ति-संग्रह' (प्रथम भाग) (वीर सेवा मन्दिर) में प्रशस्ति सं. 134 'द्रव्यसंग्रहवृत्ति' की है, जिसके अन्त में अंकित है -

“इति श्रीपरमागमिकभट्टारक-श्रीनेमिचन्द्रविरचित-षड्द्रव्यसंग्रहे
श्रीप्रभाचन्द्रदेवकृतसंक्षेपटिप्पणकं समाप्तम्॥”

और पण्डित परमानन्द शास्त्री ने विवेच्य पण्डित प्रभाचन्द्र से भिन्न इसका कर्ता माना है।

डॉ. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य द्वारा सम्पादित तथा माणिक्यचन्द्र जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित 'न्यायकुमुदचन्द्र' में पण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री ने अपनी विशद प्रस्तावना में इस बात पर प्रभूत प्रकाश डाला है कि विवेच्य प्रभाचन्द्र ने न केवल जैन ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन-मनन किया था अपितु जैनेतर साहित्य और दर्शनों का भी सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया था। कमलशील कृत 'तत्त्वसंग्रह की पञ्जिका' और जयन्तभट्ट की 'न्यायमञ्जरी' के भाषा-सौष्ठव और प्रतिपादन शैली से वे विशेष रूप से प्रभावित रहे। वैशेषिक, सांख्य-योग, वेदान्त, मीमांसा, बौद्ध और वैयाकरण दर्शनों का ज्ञान उन्हें अपनी बात तुलनात्मक और युक्तियुक्त ढंग से प्रस्तुत करने और विपक्षियों के तर्कों का खण्डन करने में सहायक बना। पण्डित कैलाशचन्द्रजी ने प्रभाचन्द्र की कृतियों की भाषा ललित और शैली निर्बाध प्रवाहवाली बताया है। विद्यानन्द और अनन्तवीर्य से प्रेरणा लेनेवाले विवेच्य प्रभाचन्द्र ने व्याख्या हेतु अपनी अलग शैली विकसित की थी और उसका प्रभाव अनेक परवर्ती रचनाकारों पर पड़ा जिनमें 'सन्मतितर्कटीका' के रचयिता अभयदेवसूरि और 'स्याद्वादरत्नाकर' के रचयिता वादिदेवसूरि का नाम उल्लेखनीय है। आचार्य हेमचन्द्र की 'प्रमाणमीमांसा' पर भी प्रभाचन्द्र का प्रभाव बताया जाता है।

प्रभाचन्द्र नाम के अनेक विद्वान, आचार्य आदि हो जाने तथा कृतियों में रचनाकार के विषय में पूर्ण विवरण के अभाव में विवेच्य पण्डित प्रभाचन्द्र का

काल-निर्धारण करने में विद्वानों में काफी ऊहापोह और मतभेद रहा, तथापि 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' में धारा-नरेश भोजराज और 'न्यायकुमुदचन्द्र' 'आराधना-सत्कथा-प्रबन्ध' एवं 'समाधितन्त्र-टीका' में श्री जयसिंहदेव का स्पष्ट उल्लेख होने से तथा अन्य अन्तः एवं बहिर्साक्ष्यों के परीक्षण के आधार पर डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन, डॉ. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य और डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री प्रभृति विद्वानों ने इनका समय 980 ई. से 1065 ई. के मध्य अनुमानित किया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' और 'न्यायकुमुदचन्द्र' जैसे तर्क और न्याय विषयक ग्रन्थों व 'शब्दाम्भोजभास्कर' और 'शाकटायनन्यास' जैसे व्याकरण-ग्रन्थों के रचयिता तथा 'पंचास्तिकाय', 'तत्त्वार्थवृत्ति', 'समाधितन्त्र' और 'क्रियाकलाप' जैसे पूर्ववर्ती गूढ़ दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं सैद्धान्तिक ग्रन्थों का भाष्य करनेवाले तथा संस्कृत गद्य में कथा-कहानी जैसे ललित विषय पर लेखनी चलानेवाले, शास्त्रार्थ में वादियों को परास्त करनेवाले विवेच्य प्रभाचन्द्र अगाध ज्ञानवाले, विलक्षण प्रतिभासम्पन्न, अद्भुत क्षमता के प्रकाण्ड पण्डित थे।

उक्त पण्डित प्रभाचन्द्र के अतिरिक्त प्रभाचन्द्र नामधारी जिन अन्य विद्वानों-आचार्यों आदि का विवरण हमें मिल सका है, उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ दे देना प्रासंगिक होगा। काल-क्रमानुसार उनका विवरण निम्नवत है -

(1) 'जैन शिलालेख संग्रह', प्रथम भाग में संकलित श्रवणबेलगोल के शिलालेख 1 (शक सवत् 522 अर्थात् 600 ई.) में उल्लिखित आचार्य प्रभाचन्द्र जो भद्रबाहु श्रुतकेवलि (लगभग 340 ई. पू.) के शिष्य 'राजा चन्द्रगुप्त' रहे बताये जाते हैं।

(2) वृहद्प्रभाचन्द्र जिन्होंने उमास्वामि के मूल 'तत्त्वार्थसूत्र' के सूत्रों का संक्षिप्तिकरण करते हुए 10 अध्यायों में शताधिक सूत्रों में 'तत्त्वार्थसूत्र' की रचना की थी। इस सूत्र-ग्रन्थ में पूज्यपाद और अकलंकदेव आदि के आधार पर यत्र-तत्र परिवर्तन-परिवर्द्धन किया गया बताया जाता है। इन वृहद्प्रभाचन्द्र का समय उमास्वामि (40-90 ई.) के उपरान्त ही संभव है।

(3) 'अर्हतप्रवचन' के कर्ता प्रभाचन्द्र जिन्होंने उपर्युक्त वृहद्प्रभाचन्द्र के 'तत्त्वार्थसूत्र' के अध्ययनोपरान्त उक्त ग्रन्थ की रचना 5 अध्यायों में 84 सूत्रों में की बताई जाती है। अकलंकदेव (625-675 ई.) द्वारा अपनी 'तत्त्वार्थराजवार्तिक',

5.38, में 'उक्तश्च अर्हत्प्रवचने' लिखकर जिस ग्रन्थ का निर्देश किया गया है वह कदाचित् उक्त ग्रन्थ ही हो।

(4) देवनन्दि पूज्यपाद (464-524 ई.) के 'जैनेन्द्र महान्यास' में 'रात्रेः कृति प्रभाचन्द्रस्य' द्वारा उल्लिखित प्रभाचन्द्र।

(5) परलुरु निवासी आचार्य विनयनन्दि के शिष्य प्रभाचन्द्र जिन्हें चालुक्य नरेश कीर्तिवर्मा प्रथम ने शक संवत् 489 अर्थात् 567 ई. में दान दिया था।

(6) पुत्राटसंघीय जिनसेन कृत 'हरिवंशपुराण' (783 ई.) में उल्लिखित कुमारसेन के शिष्य प्रभाचन्द्र।

(7) सेनसंघीय जिनसेन स्वामी (770-850 ई.) कृत आदिपुराण में उल्लिखित कवि प्रभाचन्द्र जिन्होंने 'चन्द्रोदय' की रचना की थी।

(8) श्रवणबेलगोल के समीपवर्ती सोमवार बस्ति के समीप शक संवत् 1001 (1079 ई.) के शिलालेख में उल्लिखित काणूरगण के प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेव।

(9) सेनगण के भट्टारक बालचन्द्र के शिष्य भट्टारक प्रभाचन्द्र जिनका समय 12वीं शती ईस्वी अनुमानित है।

(10) 'प्रभावकचरित' (1277 ई.) के रचयिता प्रभाचन्द्र सूरि।

(11) मूलसंघ देशीयगण पुस्तकगच्छ की इंग्लेश्वर शाखा में हुए, सारत्रय (समयसार, प्रवचनसार और पंचास्तिकायसार) में निपुण तथा 'परमागमसार' और 'भावसंग्रह' कृतियों के रचयिता श्रुतमुनि के शास्त्रगुरु प्रभाचन्द्र मुनि। इनका उल्लेख श्रुतमुनि ने शक संवत् 1263 (1341 ई.) में मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी को पूर्ण किये गये अपने 'परमागमसार' की प्रशस्ति में किया है।

(12) विक्रम संवत् 1489 (1432 ई.) में भाद्रपद शुक्ल पंचमी को सकीट नगर (जिला एटा, उत्तरप्रदेश) में लंबकंचुक (लमेचु) जाति के सकरु साहु के पंडित पुत्र सोनिक की प्रार्थना पर और ब्रह्मचारी जैता के प्रबोधनार्थ उमास्वाति के 'तत्त्वार्थसूत्र' पर 'तत्त्वार्थरत्नप्रभाकर' नामक टीका रचनेवाले भट्टारक प्रभाचन्द्र जो काष्ठान्वय में आचार्य नयसेन की परम्परा में भट्टारक हेमकीर्ति के शिष्ट भट्टारक धर्मचन्द के पश्चात् पट्टासीन हुए।

(13) मूलसंघ सरस्वतीगच्छ में हुए भट्टारक ज्ञानभूषण के शिष्य और 'ज्ञानसूर्योदय' नाटक के रचयिता भट्टारक वादिचन्द्र के गुरु भट्टारक प्रभाचन्द्र।

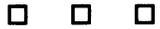
‘ज्ञानसूर्योदय’ नाटक की रचना मधूकनगर में संवत् 1648 (1591 ई.) की माघ शुक्ल अष्टमी को हुई थी। उसकी प्रशस्ति में भट्टारक वादिचन्द्रसूरि ने अपने गुरु भट्टारक प्रभाचन्द्र का उल्लेख किया है।

(14) मुमुक्षु विद्यानन्दि द्वारा गान्धारपुरी में संवत् 1779 (1722 ई.) में रचित ‘सुदर्शनचरित्र’ की प्रशस्ति में उल्लिखित रत्नकीर्ति के पश्चात् पट्टासीन होनेवाले प्रभेन्दु अर्थात् प्रभाचन्द्र भट्टारक।

ज्योति निकुंज

चारबाग

लखनऊ-226004



जयतु प्रभेन्दु सूरि:

- आचार्य राजकुमार जैन



जैन मनीषियों, रचनाकारों, ग्रंथ-लेखकों एवं आचार्यों की यह विशेषता रही है कि आत्मश्लाघा से बचते हुए उन्होंने स्वयं के विषय में अधिक कुछ नहीं लिखा। ग्रंथ की प्रशस्ति के रूप में यदि कुछ लिखा भी तो वह अत्यल्प ही। ऐसी स्थिति में उनके विषय में विशेषतः उनका काल निर्धारण करने में बाधा उत्पन्न होती है, तथापि उन ग्रंथकारों द्वारा किया गया अपने गुरु का स्तवन, गुरु-गुण संकीर्तन एवं वन्दन तथा उनके परवर्ती ग्रंथकारों-रचनाकारों द्वारा किया गया उनका सादर स्मरण अथवा अपने ग्रंथ में उनके (अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के) ग्रंथों के कतिपय अंशों - श्लोकों के उद्धरण आदि साक्ष्यों के आधार पर आचार्यों एवं उनकी कृतियों का निर्णय किया जाता है। यह समस्या उस समय और अधिक गहरी हो जाती है जब एक ही नामधारी एकाधिक विद्वान हमारे समक्ष होते हैं। यदि उनके विषय में स्वतंत्र रूप से अथवा अधिकृत रूप से कोई परिचय प्राप्त नहीं होता है अथवा अल्प या सन्दिग्ध परिचय प्राप्त होता है तो उसके आधार पर उनके व्यक्तित्व, कर्तृत्व एवं काल के निर्धारण की समस्या जटिल हो जाती है। यह प्रवृत्ति सामान्यतः प्राचीन काल से लेकर मध्यकाल के प्रारंभ तक भारतीय साहित्यिक परम्परा में देखने को मिलती है।

जैनधर्मानुमत विभिन्न धार्मिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, तात्त्विक, तार्किक (न्यायप्रधान), व्याकरण, आचार-शास्त्र आदि विषयों पर ग्रंथों की रचना कर अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं वैदूष्य की छाप छोड़नेवाले जैनाचार्यों की परम्परा में प्रथित 'तर्क ग्रंथकार' और 'शब्दाम्भोरूह भास्कर' आदि विशेषणों से सुशोभित, विलक्षण तार्किक, बुद्धि-वैभव से सम्पन्न, महनीय व्यक्तित्व के धनी पण्डितप्रवर प्रभाचन्द्र ऐसे अप्रतिम मनीषी हैं जिन्होंने अत्यन्त दुरूह विषय पर अपनी लेखनी का चमत्कार प्रदर्शित कर अपने प्रखर पाण्डित्य का परिचय दिया है। उन्होंने 'परीक्षामुख' ग्रंथ पर 12,000 श्लोकप्रमाण वृहदाकार टीका जो 'प्रमेयकमल मार्तण्ड' के नाम से ख्यात है लिखकर जैन वाङ्मय के भण्डार को अपूर्वता प्रदान की है। यह जैन न्याय शास्त्र का एक ऐसा अद्वितीय-अपूर्व और महत्वपूर्ण ग्रंथ है जो प्रमेयरूपी-कमलों को उद्भासित करनेवाले मार्तण्ड - सूर्य की भाँति है।

श्रीमत्प्रभाचन्द्र द्वारा लिखित ग्रंथों, टीका-टिप्पणों, व्याख्याओं तथा अन्य रचनाओं से अभिव्यक्त उनका वैदूष्य, पाण्डित्य, व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व यद्यपि निर्विवाद है, फिर भी जैनाचार्यों की परम्परा में प्रभाचन्द्र नामधारी एकाधिक विद्वानों और उनकी रचनाओं - कृतियों का उल्लेख मिलने से उनका काल (समय) निर्धारण करने में किंचित् संशय उत्पन्न कर दिया है। तथापि विभिन्न शास्त्रीय उद्धरण जो उनके नाम से या उनके विषय में प्राप्त होते हैं तथा उपलब्ध अन्य साक्ष्यों के आधार पर उनका निर्विवाद काल निर्णय करना अधिक कष्ट-साध्य नहीं है।

इस सम्बन्ध में कतिपय उन सन्दर्भों का यहाँ उल्लेख करना अभीष्ट है जो उनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को रेखांकित करते हैं। पण्डितप्रवर प्रभाचन्द्र के प्रति श्री चारुकीर्ति द्वारा किए गए गुरु-गुण-संकीर्तन से उनकी महनीयता प्रतिपादित होती है जो निम्न प्रकार है -

जयतु प्रभेन्दु सूरिः प्रमेयकमल-प्रकाण्डमार्तण्डेन ।

यद् वदन निसृतेन प्रतिहतमखिलं तमो हि बुधवर्गाणाम् ।¹

अर्थात् जिनके मुख से निःसृत प्रमेयकमल रूपी प्रकाण्ड मार्तण्ड ने विद्वानों के अखिल अंधकार (आज्ञानान्धकार) को हर लिया उन प्रभाचन्द्र की जय हो।

आगे भी श्रीमत्प्रभाचन्द्र के प्रति विनम्रतापूर्वक अपनी अल्प मति का उल्लेख करते हुए गुरु के गुणों का बखान करना चारुकीर्ति को अधिक अभीष्ट

रहा है। वे अपने गुरु श्री प्रभाचन्द्र के प्रति निम्न प्रकार से अपना आदर भाव प्रकट करते हैं -

माणिक्यनन्दि रचितं क्वनुसूत्रवृन्दं
क्वल्पायसी मम मतिस्तु तदीय भक्त्या ।
तादृक् प्रभेन्दुवचसां परिशीलनेन
कुर्वे प्रभेन्दुमधुनाबुधहर्षकन्दम् ।²

अर्थात् कहीं माणिक्यनन्दि द्वारा रचित सूत्र-समूह और कहीं मेरी अल्पमति, किन्तु उनकी भक्ति से और उसी प्रकार के प्रभाचन्द्र के वचनों का परिशीलन करके विद्वानों का हर्ष बढ़ानेवाले प्रभेन्दु (इन्दु की प्रभावाले ग्रंथ प्रमेयरत्नमालालंकार) की मैं रचना करता हूँ।

इस प्रकार प्रमेयरत्नमालालंकार के रचनाकार के द्वारा श्रीमत्प्रभाचन्द्र का उपर्युक्त रूप से जो गुण-कीर्तन किया गया है उससे ग्रन्थकर्ता की अपने गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा और भक्ति स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। यदि पण्डितप्रवर प्रभाचन्द्रजी एक सामान्य कोटि के ही लेखक या ग्रन्थकर्ता होते तो इस प्रकार उनके गुणों का संकीर्तन नहीं किया जाता। जिसका यश दिग्-दिगन्त-व्यापी होता है वह किसी व्यक्ति द्वारा गुण-कीर्तन किए जाने मात्र से महिमा-मण्डित नहीं हो जाता है, अपितु यत्र-तत्र-सर्वत्र उसके वैदूष्य की अविरल धारा प्रवाहित होती है। ऐसा ही कुछ निम्न श्लोक (शिलालेख) से ध्वनित होता है जो जैन शिलालेख संग्रह में संकलित है -

श्री धाराधिप भोजराज-मुकुट-प्रोताश्म-रश्मि-च्छटा-
च्छाया-कंकुम-पंकलिप्त चरणाम्भोजात लक्ष्मीधवः ।
न्यायाब्जाकरमण्डने दिनमणिश्शब्दाब्ज-रोदोमणि-
स्थेयात्पण्डित-पुण्डरीक-तरणि श्रीमान् प्रभाचन्द्रमा ।।
श्री चतुर्मुख देवानां शिष्योऽधृष्यः प्रवादिभिः ।
पण्डित श्री प्रभाचन्द्रो रुद्रवादिगजांकुशः ।³

अर्थात् श्री धाराधीश भोजराज के मुकुट में जड़ी मणियों की रश्मियों (किरणों) की कान्ति से जिनके चरण-कमलों की श्री कस्तूरी-चन्दनलेप के समान भासित होती थी अर्थात् जिनके चरणों में मणिजटित मुकुटधारी धारा-नरेश भोजराज नमस्कार

करते थे, जो न्यायरूपी कमल-समूह को मण्डित करनेवाले दिनमणि (मार्तण्ड) थे (जिन्होंने प्रमेयकमलमार्तण्ड नामक ग्रंथ की रचना की थी), जो शब्दाब्ज (शब्दरूपी कमलों) को विकसित करनेवाले रोदोमणि (भास्कर) थे (जिन्होंने शब्दाम्भोज भास्कर ग्रंथ की रचना की थी) और जो पण्डित पुण्डरीकों (पण्डितरूपी कमलों) को प्रफुल्लित करनेवाले तरणि (सूर्य) थे। ऐसे श्रीमत् प्रभाचन्द्र चिरजीवी हों - अर्थात् उनका यश अक्षुण्ण रहे। श्री चतुर्मुख देवों के शिष्य, प्रवादियों द्वारा अविजित, रुद्रवादि गजों पर अंकुश रखनेवाले ऐसे प्रभाचन्द्र पण्डित थे।

श्री प्रभाचन्द्र का परिचय देनेवाले और उनकी यशोगाथा को ध्वनित करनेवाले एक शिलालेख का उल्लेख श्रवणबेलगोला के शिलालेख संख्या 64 में मिलता है जो निम्न प्रकार है -

अविद्धकर्णादिक पद्मनन्दिसैद्धान्तिकाख्योऽजनि यस्य लोके ।
 कौमारदेव-व्रतिताप्रसिद्धिर्जीयात्तुसो ज्ञाननिधिस्सधीरः ॥
 तच्छिष्यः कुलभूषणाख्ययतिपश्चारित्रवारान्निधिः
 सिद्धान्ताम्बुधिपारगो नतविनेयस्तत्सधर्मो महान् ।
 शब्दाम्भोरूह-भास्करः प्रथिततर्कग्रन्थकारः प्रभा-
 चन्द्राख्यो मुनिराज-पण्डितवरः श्री कुण्डकुण्डान्वयः ।⁴

इसके अनुसार मूल संघान्तर्गत नन्दिगण के प्रभेदरूप देशीयगण के गोल्लाचार्य के शिष्य अविद्धकर्णी और कौमारव्रती अपूर्व ज्ञान के भण्डार पद्मनन्दि सैद्धान्तिक नामक विद्वान हुए जिनकी लोक में अद्वितीय प्रसिद्धि है, वे जयवन्त हों। उनके शिष्य सिद्धान्तसागर में पारंगत, सच्चारित्र के धारक कुलभूषण नामक यति के सधर्मा महान शब्दाम्भोरूहभास्कर नामक प्रथित तर्क ग्रंथ के कर्ता श्री कुण्डकुण्डान्वय के मुनिराज पण्डित प्रवर प्रभाचन्द्र हुए।

इस शिलालेख से एक यह तथ्य भी सुस्पष्ट है कि प्रभाचन्द्र 'न्यायकुमुदचन्द्र' और 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' जैसे तर्क ग्रंथों के रचयिता होने के साथ-साथ 'शब्दाम्भोजभास्कर' नामक जैनेन्द्र न्यास के भी कर्ता थे। यह शिलालेख यह भी संकेत करता है कि प्रभाचन्द्र के गुरु पद्मनन्दि सैद्धान्तिक थे जो अविद्धकर्णी और कौमार देवव्रती थे जो दक्षिण भारत के निवासी थे। पद्मनन्दि से शिक्षा-दीक्षा लेकर प्रभाचन्द्र उत्तर भारत में आकर धारा नगरी में निवास करने लगे। यहाँ वे आचार्य माणिक्यनन्दि के सम्पर्क में आए और उनका शिष्यत्व स्वीकार

किया। प्रभाचन्द्र ने स्वयं को माणिक्यनन्दि के पदों में रत बतलाया है जिससे उनका साक्षात् शिष्यत्व स्वीकार किया। प्रभाचन्द्र ने स्वयं को माणिक्यनन्दि के पदों में रत बतलाया है जिससे उनका साक्षात् शिष्यत्व प्रकट होता है। अतः यह सम्भव है कि प्रभाचन्द्र ने जैन न्याय अध्ययन अपने द्वितीय गुरु माणिक्यनन्दि से किया हो। 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' ग्रंथ में प्रभाचन्द्र ने माणिक्यनन्दि को गुरु के रूप में स्मरण करते हुए उनके ही पदपंकज-प्रसाद से प्रमेयकमल मार्तण्ड की रचना करने का उल्लेख किया है। यह तथ्य 'प्रमेयकमल मार्तण्ड' में किए गए मंगलाचरण से स्पष्ट है, जो निम्न है -

शास्त्रं रोमि वरमल्पतरावबोधो
माणिक्यनन्दि पद पंकज सत्प्रसादात् ।
अर्थ न किं स्फुटयति प्रकृतं लघीयां -
ल्लोकस्य भानुकर विस्फरिताद् गवाक्षः।⁵

प्रस्तुत मंगलाचरण में प्रभाचन्द्र द्वारा माणिक्यनन्दि (गुरु) के चरण-कमल के प्रसाद से शास्त्र-रचना करने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार से शिमोगा जिले के नगर तालुका का निम्न शिलालेख भी महत्वपूर्ण है जिसमें श्री माणिक्यनन्दि को 'जिनराज' बतलाकर उन्हें महिमामण्डित किया गया है -

माणिक्यनन्दी जिनराज वाणी प्राणाधिनाथः परवादिमर्दी ।

चित्र प्रभाचन्द्र इह क्षमायां मार्तण्डवृद्धौ नितरां व्यदीपि।⁶

अर्थात् माणिक्यनन्दि जिनराज की वाणी के प्राणनाथ (श्री मज्जिनेन्द्रदेव की वाणी पर अधिकार रखनेवाले), परवादियों (विरोधियों) के मतों का मर्दन-खण्डन करनेवाले (वाद-विवाद में विरोधियों को परास्त करनेवाले) प्रभाचन्द्र थे। आश्चर्य है इस पृथ्वी पर मार्तण्ड (सूर्य) की वृद्धि में चन्द्रमा की प्रभा निरन्तर सन्नद्ध रही। प्रकाशान्तर से इसका अभिप्राय यह हुआ कि पण्डितप्रवर प्रभाचन्द्र ने प्रमेयरूपी कमलों को उद्भासित (विकसित) करनेवाले मार्तण्ड (सूर्य) का कार्य किया। अर्थात् उन्होंने 'प्रमेय-कमलमार्तण्ड' नामक ग्रंथ की रचना की।

इसी क्रम में प्रमेयकमलमार्तण्ड की प्रशस्ति में उल्लिखित निम्न श्लोक द्वय उद्धृत करना अप्रासंगिक नहीं होगा जिनमें प्रभाचन्द्र ने श्री माणिक्यनन्दि की गुरु-रूप में वन्दना करते हुए स्वयं को श्री पद्मनन्दि सैद्धान्त का शिष्य और रत्ननन्दि के चरण में रत सूचित किया है -

गुरुः श्रीनन्दिमाणिक्यो नन्दिताशेषसज्जनः ।
 नन्दताद् दुरितैकान्तरजा-जैन-मतार्णवः ॥
 श्री पद्मनन्दि सैद्धान्तशिष्योऽनेकगुणालयः ।
 प्रभाचन्द्रश्चिरं जीयाद्रत्ननन्दि पदे रतः ।⁷

‘प्रमेयकमल मार्तण्ड’ की इस प्रशस्ति में ग्रंथकर्ता प्रभाचन्द्र ने आदरभावपूर्वक अपने गुरुद्वय का स्मरण करते हुए उन्हें अनेक गुणों का आलय (भण्डार) बतलाया है और गुरु (माणिक्यनन्दि) के चरणों में रत रहते हुए उनके पद-पंकज प्रसाद से (अत्यन्त दुरूह) ग्रंथ की रचना की। ग्रंथ की प्रशस्ति का निम्न अंश यह भी ध्वनित करता है कि प्रमेयकमलमार्तण्ड ग्रंथ की रचना श्री भोजदेव के राज्य में धारा नगरी-निवासी श्रीमत्प्रभाचन्द्र पण्डित के द्वारा की गई -

श्री भोजदेवराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना परापपरमेष्ठिपदप्रणामार्जितामल
 पुण्यनिराकृतनिखिलमलकलंकेन श्रीमत्प्रभाचन्द्रपण्डितेन निखिल
 प्रमाणप्रमेयस्वरूपोद्द्योतपरीक्षामुखपदमिदं विवृतमिति ।⁸

अर्थात् भोजदेव के राज्य में धारा निवासी परापपरमेष्ठि के चरणों में प्रणाम करके निर्मल पुण्यार्जन से सम्पूर्णमलरूप कलंके को धोनेवाले श्री मत्प्रभाचन्द्र पण्डित के द्वारा निखिल प्रमाण-प्रमेय के स्वरूप को प्रकाशित करनेवाले परीक्षामुख की यह टीका है।

इससे श्री प्रभाचन्द्र द्वारा रचित वैदूष्यपूर्ण कृति का आभास सहज ही हो जाता है। इसके अतिरिक्त उनके विषय में जो भी विवरण प्राप्त होता है, जो उद्धरण मिलते हैं या विभिन्न साक्ष्य आदि उपलब्ध होते हैं उनसे यह स्पष्टरूप से ज्ञात होता है कि वे एक उच्चकोटि के विद्वान, तर्कबुद्धि से परिपूर्ण, विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न, अद्भुत क्षमतावाले ऐसे विख्यात मनीषी थे जो समस्त प्रकार के वाद-विवाद में अपने विरोधियों को परास्त करने की अद्भुत क्षमता रखते थे। यही कारण है कि वे तर्क और न्याय शास्त्र के महासमुद्र में तैरकर प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्र जैसे दुरूह ग्रंथों की रचना करने में समर्थ हुए। सामान्यतः तार्किक बुद्धि की विलक्षणता विद्वानों में सर्वत्र देखने को नहीं मिलती है। इनकी एक अद्भुत विशेषता यह है कि किसी भी विषय का प्रतिपादन,

समर्थन अथवा खण्डन, जो भी हो, प्रचुर युक्तियों से करते हैं। यह इनकी विलक्षणता है कि विषय-प्रतिपादन शैली में तो ये तार्किक हैं ही, चिन्तन की गम्भीरता के कारण दार्शनिक भी हैं जिससे प्रतीत होता है कि इन्होंने वैदिक और अवैदिक दर्शनों का गहन अध्ययन किया था।

पण्डित प्रभाचन्द्र के कर्तृत्व पर जब दृष्टिपात करते हैं तो उनके द्वारा निबद्ध-रचित अनेक ग्रंथों, व्याख्या, टिप्पण, न्यास आदि की जानकारी प्राप्त होती है, जो निम्न है -

प्रस्तुत आलेख में प्रभाचन्द्र के विषय में जो विवरण प्रस्तुत किया गया है और यत्र-तत्र उनके कर्तृत्व के विषय में चर्चा की गई है, उससे यह सुस्पष्ट है कि उन्होंने सर्वप्रथम 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' (12,000 श्लोकप्रमाण) ग्रंथ की रचना की। तत्पश्चात् उन्होंने 'न्यायकुमुदचन्द्र' की रचना की जो उनके वैदूष्य की धवल पताका की परिचायक है। प्रमेयकमलमार्तण्ड की अन्तिम प्रशस्ति में 'भोजदेवराज्ये' उल्लिखित है, जबकि न्यायकुमुदचन्द्र की पुष्पिका में 'श्रीजयसिंहदेवराज्ये' लिखित होने का अभिलेख मिलता है। धारा-नरेश भोजराज का समय लगभग 1010-1053 तथा जयसिंहदेव का राज्यकाल सन् 1065 के आस-पास का है।

ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने देवनन्दि पूज्यपाद (464-524) के द्वारा रचित व्याकरण ग्रंथ जैनेन्द्र महान्यास पर शब्दाम्भोज भास्कर नामक ग्रंथ जो अपूर्ण (लगभग साढ़े तीन अध्याय तक) बतलाया जाता है, की रचना की। इसके अतिरिक्त अमोघवर्ष राष्ट्रकूट-नरेश के राज्यकाल (814-877) में हुए शाकटायन द्वारा रचित व्याकरण सम्बन्धी सूत्र-ग्रंथ पर 'शाकटायन-न्यास' नामक व्याख्या के रचनाकार के रूप में भी उनकी ख्याति दिग्-दिगन्त व्यापी हुई। डॉ. नेमीचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य के अनुसार प्रभाचन्द्र ने यापनीय संघाग्रणी शाकटायनाचार्य के 'केवलभुक्ति और स्त्रीभुक्ति प्रकरणों' की कतिपय कारिकाओं को पूर्वपक्ष के रूप में उद्धृत किया है। अतः प्रभाचन्द्र का समय नवम शताब्दी से पूर्व मानना न्याय-संगत नहीं होगा।⁹

श्री प्रभाचन्द्र द्वारा एक प्रबन्ध लिखित होने का भी संकेत प्राप्त होता है जिसका उल्लेख न्यायकुमुदचन्द्र की प्रशस्ति में निम्न प्रकार से मिलता है -

अभिभूय निजविपक्षं निखिलमतोद्योतनो गुणाम्भोधिः ।

सविता जयतु जिनेन्द्रः शुभप्रबन्धः प्रभाचन्द्रः ।¹⁰

श्री प्रभाचन्द्र पण्डित द्वारा श्री जयसिंहदेव के राज्य में 'आराधना सत्कथा प्रबन्ध' नामक एक प्रबन्ध की रचना की गई थी जो गद्य रूप में निबद्ध है और उसकी प्रशस्ति में इसका उल्लेख प्राप्त होता है।¹¹

श्री पण्डित प्रभाचन्द्र के द्वारा विभिन्न ग्रंथों पर लिखित टिप्पण ग्रंथों की संख्या भी कुछ कम नहीं है। उनके द्वारा लिखित निम्न टिप्पण ग्रंथ उल्लेखनीय हैं -

1. आचार्य कुन्दकुन्द (ई.पू. 8-44) के पंचास्तिकाय (पंचाल्थि पाहुण) पर 'पंचास्तिकाय प्रदीप' और 'प्रवचनसार' पर 'प्रवचनसार सरोज भास्कर' टिप्पण ग्रंथ।

2. गृद्धपिच्छाचार्य उमास्वाति (40-90 ई.) के 'तत्त्वार्थाधिगम सूत्र' पर देवनन्दि पूज्यपाद की तत्त्वार्थवृत्ति के विषम पदों का संक्षिप्त अर्थ-सूचक टिप्पण ग्रंथ - 'तत्त्वार्थवृत्ति पद'।

3. श्री समन्तभद्राचार्य (लगभग 120-185 ई.) द्वारा रचित 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' पर 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका'।

4. देवनन्दि पूज्यपाद द्वारा रचित समाधितन्त्र पर 'समाधितन्त्र टीका'।

5. आदिपुराण के रचनाकार जिनसेन (770-850 ई.) के शिष्य गुणभद्र द्वारा रचित आत्मानुशासन पर 'आत्मानुशासन तिलक टिप्पण'।

6. आचार्य पुष्पदन्त द्वारा रचित महापुराण (965 ई.) पर 'महापुराण टिप्पण'।

7. पद्मनन्दि सैद्धान्तिक के ग्रंथ क्रियाकलाप पर 'क्रियाकलाप टीका'।

यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक है कि क्या उपर्युक्त सभी टीका-टिप्पण ग्रंथों-रचनाओं के रचयिता प्रमेयकमलमार्त्तण्ड के कर्ता प्रभाचन्द्र ही हैं? इस सम्बन्ध में यहाँ यह स्पष्ट किया जाना उचित होगा कि तत्त्वार्थवृत्ति पद और क्रियाकलाप टीका की प्रशस्तियों में टीकाकार प्रभाचन्द्र ने स्वयं को श्री पद्मनन्दि सैद्धान्तिक का शिष्य बतलाया है। अतः यह सुनिश्चित है कि इन चारों कृतियों -

प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्र, तत्त्वार्थवृत्तिपद और त्रिव्याकलाप टीका के लेखक-रचनाकार प्रभाचन्द्र ही हैं।

इसके अतिरिक्त यह भी एक ध्यान देने योग्य तथ्य है कि श्री प्रभाचन्द्र ने जिस प्रकार प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्र एवं आराधना-सत्कथा प्रबन्ध में अपने नाम के पूर्व 'पण्डित' विशेषण का प्रयोग किया है उसी प्रकार पंचास्तिकाय प्रदीप और समाधितन्त्र टीका - इन दोनों टीका ग्रंथों में भी उन्होंने अपने नाम के पूर्व 'पण्डित' विशेषण का प्रयोग किया है इससे इन दोनों ग्रंथों के लेखक एक ही (प्रभाचन्द्र) होने में कोई सन्देह नहीं होना चाहिये। इसके अतिरिक्त पण्डित प्रभाचन्द्र द्वारा लिखित 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका' भी असंदिग्ध रूप से उनकी ही रचना है, क्योंकि एक तो उसमें समाधितन्त्र टीका से शैलीगत साम्य है, दूसरे आराधना-सत्कथा-प्रबन्ध में उल्लिखित कथाओं से श्रावकाचार टीका में प्रतिपादित कथाओं में भी स्पष्टतः साम्य लक्षित होता है।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि श्री प्रभाचन्द्र द्वारा प्रणीत कुछ कृतियों/ग्रंथों में उनके नाम के आगे 'पण्डित' विशेषण का प्रयोग किया गया है, किन्तु पश्चाद्पूर्वी अन्य रचनाओं/कृतियों में उनके नाम के पूर्व 'पण्डित' विशेषण का प्रयोग नहीं मिलता है जैसा कि उनके द्वारा रचित 'आत्मानुशासन तिलक' के अन्त में उल्लिखित है - 'इति प्रभाचन्द्राचार्य विरचितं।' इसी प्रकार 'प्रवचनसार सरोजभास्कर' के अन्त में 'इति प्रभाचन्द्रदेव विरचिते' अंकित पाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः गृहस्थ जीवनयापन करते हुए उस गृहस्थ जीवनकाल में उन्होंने जितने ग्रंथों की रचना की उनमें उन्होंने अपने नाम के पूर्व 'पण्डित' विशेषण, जो विद्वान होने का सूचक था और जिसका प्रयोग करने के वे अधिकारी थे, का प्रयोग किया। किन्तु कालान्तर में उनके द्वारा दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् त्यागी जीवनकाल में उन्होंने इस विशेषण का प्रयोग करना उचित नहीं समझा हो, क्योंकि यह विशेषण उनके लिए तुच्छ हो गया होगा जिसकी कोई उपयोगिता उनके लिए नहीं थी।

यद्यपि प्रभाचन्द्र नाम के एकाधिक विद्वानों, ग्रंथकारों, टिप्पणकर्ताओं, न्यास लेखकों ने जैन वाङ्मय परम्परा को ज्योतिर्मान किया है, तथापि अपने पाण्डित्य और वैदूष्य की जो अमिट छाप तर्क और न्याय-विषयप्रधान ग्रंथों - प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुमुदचन्द्र जैसे दुरूह ग्रंथ के रूप में पण्डित प्रभाचन्द्र ने छोड़ी है और

अपनी विलक्षण प्रतिभा का जो परिचय अपने से पूर्ववर्ती गूढ़, दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं सैद्धान्तिक ग्रंथों - शब्दाम्भोज भास्कर, शाकटायन न्यास, पंचास्तिकाय, तत्त्वार्थवृत्ति, समाधितन्त्र एवं क्रियाकलाप पर भाष्य, टिप्पण, टीका लिखकर दिया है तथैव जिन्होंने अपनी लेखनी द्वारा संस्कृत गद्य के माध्यम से कथा जैसे ललित विषय पर भी अधिकारपूर्वक लिखने का कौशल प्रदर्शित किया है। ऐसे पण्डित प्रभाचन्द्र निश्चय ही अद्भुत क्षमतावाले प्रकाण्ड विद्वान (पण्डित) थे।

ऊपर श्री प्रभाचन्द्र द्वारा लिखित जिन ग्रंथों, कृतियों या रचनाओं का उल्लेख किया गया है उनके अतिरिक्त उनके द्वारा लिखित कुछ अन्य रचनाओं के सन्दर्भ-उल्लेख भी देखने को मिलते हैं। जैसे -

1. आदि पुराण (रचना 838) के प्रारम्भ में पूर्वाचार्यों का स्मरण करते हुए सेनसंघीय श्री जिनसेनाचार्य (770-850) ने एक कवि आचार्य के रूप में प्रभाचन्द्र के प्रति निम्न प्रकार से बहुमान प्रकट किया है -

चन्द्रांशु शुभ्रयशसं प्रभाचन्द्रकविं स्तुवे ।
कृत्वा चन्द्रोदयं येन शश्वदाहादितं जगत् ॥
चन्द्रोदयकृतस्तस्य यश केन न शस्यते ।
यदा कल्पमनाग्लानि सतां शेखरतां गतम् ।¹²

अर्थात् चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेत यश के धारक प्रभाचन्द्र कवि का स्तवन करता हूँ जिन्होंने चन्द्रोदय की रचना करके संसार को आल्हादित किया। चन्द्रोदय की रचना करनेवाले उन प्रभाचन्द्र के कल्पान्त काल तक स्थिर रहनेवाले तथा सज्जनों के मुकुट भूत यश की प्रशंसा कौन नहीं करता? अर्थात् सभी करते हैं।

2. हरिवंश पुराण (रचनाकाल 783) के निम्न श्लोक में प्रभाचन्द्र के उज्ज्वल यश की चर्चा करते हुए उन्हें कुमारसेन का शिष्य बतलाया है -

आकूपारं यशो लोके प्रभाचन्द्रोदयज्ज्वलम् ।
गुरोः कुमारसेनस्य विचख्यजितात्मकम् ।¹³

3. श्रवणबेलगोल के शिलालेख (लगभग शक सं. 522 अर्थात् 600 ई.) में उल्लिखित आचार्य प्रभाचन्द्र जो भद्रबाहु श्रुतकेवलि (लगभग 350 ई. पू.) के शिष्य राजा चन्द्रगुप्त रहे बतलाए जाते हैं।¹⁴

4. वृहद् प्रभाचन्द्र जिन्होंने उमास्वामि के मूल तत्त्वार्थ सूत्र के सूत्रों का संक्षिप्तीकरण करते हुए दस अध्यायों में शताधिक सूत्रों में तत्त्वार्थ सूत्र की रचना की थी। यद्यपि इस सूत्र ग्रंथ में पूज्यपाद और अकलंकदेव आदि के आधार पर यत्र-तत्र परिवर्तन-परिवर्धन भी किया गया बतलाया जाता है। इन प्रभाचन्द्र का समय उमास्वामी (40-90 ई.) के उपरान्त ही सम्भव है।¹⁵

5. अर्हत्प्रवचन के कर्ता प्रभाचन्द्र जिन्होंने उक्त वृहद् प्रभाचन्द्र के तत्त्वार्थ सूत्र के अध्ययन के उपरान्त उक्त अर्हत्प्रवचन ग्रंथ की रचना पाँच अध्यायों - 84 सूत्रों में की बतलाई जाती है। श्री अकलंकदेव (625-673 ई.) द्वारा अपने ग्रंथ तत्त्वार्थ राजवार्तिक 5.38 में 'उक्तं च अर्हत्प्रवचने' लिखकर 'अर्हत्प्रवचन' ग्रंथ का उल्लेख किया गया है जो कदाचित् प्रभाचन्द्र द्वारा लिखित उक्त ग्रंथ ही हो।¹⁶

6. देवनन्दि पूज्यपाद (465-524 ई.) द्वारा लिखित 'जैनेन्द्र महान्यास' में एक उल्लेख 'रात्रेः कृति प्रभाचन्द्रस्य' के अन्तर्गत प्रभाचन्द्र को सन्दर्भित किया गया है।¹⁷

7. आचार्य विनयनन्दि, जो परलुरु के निवासी थे, के शिष्य प्रभाचन्द्र का उल्लेख मिलता है जिन्हें राजा कीर्तिवर्मा प्रथम (शक सं. 489 याने 567 ई.) ने दान दिया था।¹⁸

8. प्रभावक चरित (1277 ई.) के रचयिता श्री प्रभाचन्द्र सूरि।¹⁹

9. सेनगण के भट्टारक बालचन्द्र के शिष्य भट्टारक प्रभाचन्द्र जिनका समय 12वीं शती ई. अनुमानित है।²⁰

10. भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य भट्टारक प्रभाचन्द्र जो चमत्कारी कार्य करने के लिए प्रसिद्ध थे।²¹

11. दिल्ली के भट्टारक जिनचन्द्र के शिष्य प्रभाचन्द्र (1479-1529 ई.) जो वि.सं. 1571 (1514 ई.) में दिल्ली के भट्टारक बने और बाद में जिन्होंने अपनी गद्दी चित्तौड़ स्थानान्तरित की। 'षट्-तर्क-तार्किकचूडामणि', 'वादिमदकुददल' और 'अबुद्ध प्रतिबोधक' आदि विशेषणों से अलंकृत इन भट्टारक प्रभाचन्द्र को अनेक ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ करवाकर ग्रंथ-संरक्षण का कार्य करने का श्रेय है।²²

12. भट्टारक ज्ञानभूषण के शिष्य भट्टारक प्रभाचन्द्र।²³

डॉ. नेमीचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य ने श्रीमत्प्रभाचन्द्र द्वारा लिखित निम्न ग्रंथों-कृतियों का उल्लेख निर्विवाद मानते हुए किया है²⁴ -

1. प्रमेयकमलमार्त्तण्ड - परीक्षामुख-व्याख्या
2. न्यायकुमुदचन्द्र - लघीयस्त्रय-व्याख्या
3. तत्त्वार्थवृत्ति पद-विवरण - सर्वार्थसिद्धि-व्याख्या
4. शाकटायन न्यास - शाकटायन व्याकरण-व्याख्या
5. शब्दाम्भोज भास्कर - जैनेन्द्र व्याकरण-व्याख्या
6. प्रवचनसार सरोज भास्कर - प्रवचनसार-व्याख्या
7. गद्य कथा कोष - स्वतंत्र रचना
8. रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका
9. समाधितंत्र टीका
10. क्रियाकलाप टीका
11. आत्मानुशासन टीका
12. महापुराण टिप्पण

श्री जुगलकिशोर मुख्तार ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार की प्रस्तावना में 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' की टीका और 'समाधितंत्र' की टीका को प्रस्तुत प्रभाचन्द्र द्वारा रचित नहीं मानकर किसी अन्य प्रभाचन्द्र की रचनाएँ माना है। किन्तु रत्नकरण्ड टीका और समाधितंत्र की टीका में प्रमेयकमलमार्त्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्र का एकसाथ विशिष्ट शैली में उल्लेख होना इस तथ्य का सूचक है कि ये दोनों टीकाएँ प्रसिद्ध प्रभाचन्द्र की हैं। जैसे -

“तदलमतिप्रसंगेन प्रमेयकमलमार्त्तण्डे न्यायकुमुदचन्द्रे प्रपंचतःप्ररूपणात्।”

- रत्नकरण्ड टीका, पृष्ठ 6

“चैर्पुनर्योगसांख्यैर्मुक्तौ तत्प्रच्युतिरात्मनोऽभ्युपगता ते प्रमेयकमलमार्त्तण्डे न्यायकुमुदचन्द्रे च मोक्षविचारे विस्तरतः प्रत्याख्याताः।”

- समाधितंत्र टीका, पृष्ठ 15

उपर्युक्त दोनों उद्धरण-अवतरण प्रभाचन्द्र कृत 'शब्दाम्भोज भास्कर' के निम्न उद्धरण से पूर्णतः मिलते हैं -

“तदात्मकत्वं चार्थस्य अच्छक्षतोऽनुमानादेश्च यथा सिद्ध्यति तथा प्रमेयकमलमार्त्तण्डे न्यायकुमुदचन्द्रे च प्ररूपितमिह द्रष्टव्यम्।”

इसके अतिरिक्त प्रभाचन्द्र द्वारा कृत गद्यकथा कोश में पाई जानेवाली अंजन चोर आदि की कथाएँ रत्नकरण्ड श्रावकाचार-गत कथाओं से पूर्णतः मिलती हैं। अतः निःसंदेह रत्नकरण्ड श्रावकाचार और समाधितंत्र की टीकाएँ प्रस्तुत श्री पण्डित प्रभाचन्द्र द्वारा रचित ही हैं।

इसी प्रकार क्रियाकलाप के टीकाकार भी पण्डित प्रभाचन्द्र ही हैं। डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने प्रतिपादित किया है कि क्रियाकलाप की टीका की एक हस्तलिखित प्रति बम्बई के सरस्वती भवन में विद्यमान है। इस प्रति की प्रशस्ति में क्रियाकलाप टीका के रचयिता प्रभाचन्द्र के गुरु का नाम पद्मनन्दि सैद्धान्तिक का उल्लेख है। प्रशस्ति पद्य निम्न है²⁵ -

वन्दे मोहतमोविनाशनपटुस्त्रैलोक्यदीपप्रभुः
संसृद्धर्तिसमन्वितस्य निखिलस्नेहस्य संशोषकः।
सिद्धान्तादिसमस्तशास्त्रकिरणः श्री पद्मनन्दिप्रभुः
तच्छिष्यात्प्रकटार्थतां स्तुतिपद प्राप्तं प्रभाचन्द्रतः॥

इसी प्रकार उपर्युक्त अन्य कृतियाँ भी असंदिग्ध रूप से श्री प्रभाचन्द्र द्वारा रचित हैं।

श्री प्रभाचन्द्र के काल के विषय में डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने डॉ. पाठक, श्री जुगलकिशोर मुख्तार, पण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री, आदि विद्वानों के विचारों का मंथन कर विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर पण्डित प्रभाचन्द्र की पूर्वावधि 940 ई. सन् और उत्तरावधि 1100 ई. सन् माना है, जबकि न्यायाचार्य पण्डित महेन्द्रकुमारजी ने अनेक पुष्ट प्रमाणों के आधार पर ई. सन् 980 से 1065 ई. सन् तक स्वीकार किया है जो अधिक तर्क-संगत प्रतीत होता है।

1. प्रमेयरत्नामालालंकार

2. वही

3. जैन शिलालेख संग्रह, भाग-1 (शिलालेख 55/69, पद्य 17 व 18)

4. जैन शिलालेख संग्रह, भाग-1, पृष्ठ 29/2 (श्रवणबेलगोल से प्राप्त शिलालेख-40)
5. प्रमेयकमलमार्तण्ड, मंगलाचरण, पद्य-2
6. जैन शिलालेख संग्रह, भाग-3, शिलालेख-667
7. प्रमेयकमलमार्तण्ड, प्रशस्ति पद 3-4
8. प्रमेयकमलमार्तण्ड (निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1941, अन्तिम प्रशस्ति)
9. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-3, पृ. 49
10. न्यायकुमुदचन्द्र, प्रशस्ति
11. शोधादर्श (37)
12. आदिपुराण, प्रथम पर्व, श्लोक 47-48
13. हरिवंशपुराण, 1.38
14. शोधादर्श (37), मार्च 1999, पृ. 33
15. वही (37) मार्च, 1999, पृ 38
16. वही
17. वही
18. वही
19. वही
20. वही
21. वही
22. वही
23. वही
24. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग 3, पृ. 50
25. वही

निदेशक

जैनायुर्वेद अनुसंधान केन्द्र
राजीव काम्प्लेक्स गली
इटारसी-461111 (म.प्र.)



एक में अनेक : विराट व्यक्तित्व के धनी आचार्य प्रभाचन्द्र

- डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल

प्रत्येक व्यक्ति की अपनी कोई/कुछ विशेषता होती है जो उसे दूसरों से भिन्न सिद्ध करती है। यही विशेषता उसका व्यक्तित्व बनता है। जैनधर्म के साहित्याकाश में अनेक आचार्यों ने विविध अनुयोगों के साहित्य की रचना की है। कुछ ने मूल रचनाएँ की हैं तो किसी ने उन रचनाओं की टीकाएँ - भाष्य लिखे। कहीं-कहीं ये टीकाएँ एवं भाष्य मूल रचनाओं जैसे बहुश्रुत हुए हैं। आचार्य प्रभाचन्द्र एक ऐसे अनोखे, अनुपम आचार्य हैं जिनमें अनेक आचार्यों के व्यक्तित्व समाए हुए हैं तथा उनकी कृतियाँ जो भाष्य हैं, वे स्वतंत्र ग्रन्थ जैसे प्रसिद्ध हुए। इसप्रकार 'एक में अनेक' की युक्ति उन्होंने चरितार्थ की है।

आपने न्याय, व्याकरण, अध्यात्म, सिद्धान्त, क्रिया, कथा, प्रथमानुयोग आदि सभी क्षेत्रों में प्रमाणिक एवं विशेषज्ञ के रूप में अपनी लेखनी चलाई जिनमें जैनेतर ग्रन्थों के सहस्रों संदर्भ दे अपने विशिष्ट वैदूष्य को प्रकट किया। आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य समन्तभद्र, उमास्वामी, पूज्यपाद, अकलंकदेव, गुणभद्र, मानिक्यनंदि, पुष्पदंत आदि सभी भास्कर (सूर्य)-स्वरूप आलोकित करनेवाले जैनाचार्यों ने आपके हृदय और बुद्धि को प्रकाशित कर रखा था, जिसके कारण आचार्य प्रभाचन्द्र ने जो भी भाष्य या अन्य कृतियाँ सृजीं, सभी के नाम के साथ 'भास्कर' या 'चन्द्र' शब्दों का प्रयोग अवश्य

किया, जैसे - प्रमेयकमलमार्तण्ड, प्रवचनसार सरोज भास्कर, शब्दाम्भोज भास्कर एवं न्यायकुमुदचन्द्र आदि। यह उनकी कल्पना शक्ति की विलक्षणता है।

परिचय

निःस्पृही जैनाचार्यों की कृतियाँ ही उनका परिचय बनती हैं। जैनाचार्य स्व-परिचय देने की भावना से विरत रहे। इस कारण उनका विस्तृत परिचय प्राप्त करना सम्भव नहीं होता। उनकी रचनाओं में उनके गुरु-शिष्य एवं राजाओं के नाम या शिलालेखों में उनका उल्लेख अवश्य मिलता है, जिससे उनका संक्षिप्त परिचय प्राप्त हो जाता है। आचार्य प्रभाचन्द्र इसके अपवाद नहीं हैं। वे मूल संघ के अन्तर्गत स्थापित नन्दिगण की आचार्य परम्परा में दक्षिण भारत में उत्पन्न हुए थे। आचार्य प्रभाचन्द्र ने 'प्रमेयकमलमार्तण्ड', 'न्यायकुमुदचन्द्र' आदि की प्रशस्ति में 'पद्मनन्दि सिद्धान्त' को अपना गुरु लिखा है। श्रवणबेलगोला के शिलालेख क्रमांक 40 में गोल्लाचार्य के शिष्य पद्मनन्दि सैद्धान्तिक का उल्लेख है। इसी शिलालेख में प्रथित तर्क ग्रन्थकार और शब्दाम्भोरूह भास्कर प्रभाचन्द्र का शिष्य रूप से उल्लेख किया है। ये दोनों विशेषण यह बताते हैं कि आचार्य प्रभाचन्द्र 'न्यायकुमुदचन्द्र' और 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' जैसे तर्क-ग्रन्थों के सृजक होने के साथ ही 'शब्दाम्भोज भास्कर' नामक जैनेन्द्र न्यास के भी सृजक थे। इस शिलालेख में पद्मनन्दि सैद्धान्तिक को 'अविरुद्धकरण' और 'कौमार देवव्रती' लिखा है। इससे यह व्यक्त होता है कि पद्मनन्दि सैद्धान्तिक ने कर्णवेध होने के पहिले ही जिनेश्वरी दीक्षा धारण करली होगी और इसीलिए वे 'कौमार देवव्रती' कहे जाते थे। इस प्रकार मूल संघ के अंतर्गत नन्दिगण के प्रभेदरूप देशीगण के श्री गोल्लाचार्य के शिष्य आचार्य पद्मनन्दि थे, उनके प्रशिष्य आचार्य प्रभाचन्द्र थे। प्रभाचन्द्र के सधर्मा मुनि श्री कुलभूषण थे। कुलभूषण मुनिराज भी सिद्धान्त शास्त्रों के पारगामी और चारित्र सागर थे। इस शिलालेख में मुनि कुलभूषण की शिष्य-परम्परा का वर्णन है, जो दक्षिण देश में हुई थी।

आचार्य प्रभाचन्द्र दीक्षागुरु से दीक्षा-शिक्षा लेकर उत्तर भारत की प्रसिद्ध धार्मिक नगरी धारा-नगरी में चले आये। कहते हैं कि यहीं पर आप आचार्य माणिक्यनन्दि के सम्पर्क में आये। आचार्य प्रभाचन्द्र ने प्रमेयकमलमार्तण्ड की प्रशस्ति में 'गुरुः श्री नन्दिमाणिक्यो नन्दिताशेषसज्जनः' (श्लोक 3) कहकर उन्हें गुरु रूप में स्मरण किया है। यह उल्लेखनीय है कि (स्व.) पण्डित महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य ने इस विषय में

कुछ भी नहीं लिखा जबकि डॉ. दरबारीलालजी कोठिया ने 'जैन न्याय की भूमिका' में माणिक्यनन्दि को प्रभाचन्द्र का न्यायविद्या-गुरु बताया है। इस सम्बन्ध में सूक्ष्म अनुसंधान अपेक्षित है।

उस समय धारा नगरी के राजा भोज थे। वे धाराधीश भोज के द्वारा पूज्य एवं सम्मान प्राप्त थे। परीक्षामुख की सुप्रसिद्ध दार्शनिक टीका प्रमेयकमल-मार्तण्ड ग्रन्थ धारानगरी में राजा भोज के काल में बनाया गया था। जैसा कि उसकी अन्तिम प्रशस्ति - 'श्रीभोजदेवराज्ये धारानिवासिना' से ज्ञात होता है। राजा भोज के बाद उसका उत्तराधिकारी जयसिंह देव हुआ। न्यायकुमुदचन्द्र, आराधना गद्य कथाकोश और महापुराण आदि की अन्तिम प्रशस्तियों - 'श्रीजयसिंहदेवराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना' से ज्ञात होता है कि इन ग्रन्थों की रचना श्री जयसिंहदेव के राज-काल में हुई। इसप्रकार आचार्य प्रभाचन्द्र का कार्यक्षेत्र धारा नगरी रहा। राजा भोज के समय के दो दान पत्र सम्वत् 1076 (ई. 1019) एवं 1079 (ई. 1022) मिले हैं।

श्रवणबेलगोला के शिलालेख क्रमांक 55 में मूलसंघ के देशीगण के देवेन्द्र सैद्धान्तदेव का उल्लेख है। इनके शिष्य चतुर्मुख देव और चतुर्मुख देव के शिष्य गोपनन्दि थे। इन गोपनन्दि के सधर्मा एक प्रभाचन्द्र का वर्णन पद्य संख्या 17 एवं 18 में आया है। इन श्लोकों में वर्णित प्रभाचन्द्र धाराधीश भोजराज के द्वारा पूज्य थे। न्यायरूप कमल-समूह (प्रमेय कमल) के दिनमणि (मार्तण्ड) थे, शब्दरूप अब्ज (शब्दाम्भोज) के विकास करने को रोदोमणि (भास्कर) के समान थे। पण्डितरूपी कमलों को प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य थे, रुद्रवादि गजों को वश करने के लिए अंकुश के समान थे तथा चतुर्मुखदेव के शिष्य थे।

क्या शिलालेख में वर्णित प्रभाचन्द्र और पद्मनन्दि सैद्धान्त के शिष्य, प्रथित-तर्क ग्रन्थकार एवं शब्दाम्भोज भास्कर प्रभाचन्द्र एक ही व्यक्ति हैं? सुप्रसिद्ध न्यायाचार्य (स्व.) पण्डित डॉ. महेन्द्रकुमारजी ने इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में दिया है। इसमें गुरुरूप में चतुर्मुखदेव का नाम आया है। डॉ. जैन के अनुसार चतुर्मुखदेव द्वितीय गुरु या गुरुसम हों, और धारानगरी में आने के बाद देशीयगण के आचार्य चतुर्मुखदेव को गुरु रूप में स्मरण किया हो! परन्तु यह सुनिश्चित है कि आचार्य प्रभाचन्द्र के आद्य गुरु पद्मनन्दि सैद्धान्तिक देव ही हैं।

प्रभाचन्द्र के 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' की प्रशस्ति इस प्रकार है -

श्री भोजदेवराज्ये श्रीमत्प्रभाचन्द्र पण्डितेन विवृतमिति'।

उक्त प्रशस्ति एवं उक्त शिलालेख नं 55 में 'पण्डित' शब्द का उपयोग यह सूचित करता है कि वे गृहस्थ थे; परन्तु आराधना गद्य कोष की 89वीं कथा में, ग्रन्थान्त में तथा प्रशस्ति में 'भट्टारक' लिखा है। अतः जान पड़ता है कि ये जीवन के उत्तर काल में मुनि हुए होंगे।

समय-निर्णय

आचार्य प्रभाचन्द्र के समय के सम्बन्ध में कई मान्यताएँ प्रचलित हैं। श्री पण्डित कैलाशचन्द्रजी शास्त्री ने न्यायकुमुदचन्द्र प्रथम भाग की प्रस्तावना में इनका समय ई. 950 से 1020 निर्धारित किया है। श्री पण्डित डॉ. महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य ने प्रमेयकमलमार्तण्ड की प्रस्तावना में इनका समय ई. 980 से 1065 तक निर्धारित किया है। श्री पण्डित डॉ. दरबारीलालजी कोठिया न्यायाचार्य ने 'जैन न्याय की भूमिका' में इनका समय 1043 ई. लिखा है। इन तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रभाचन्द्र का समय विक्रम सम्वत् की 11वीं शताब्दी रहा है। राजा भोज का भी यही समय है।

प्रभाचन्द्र की विशिष्टता

आचार्य प्रभाचन्द्र विशिष्ट प्रतिभा के धनी थे। वे संस्कृत के प्रकांड विद्वान्, दार्शनिक और सिद्धान्त-शास्त्रों के ज्ञाता थे। उन्होंने प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्र जैसी प्रमेय-बहुल कृतियों की रचना कर जैन-जैनेतर दर्शन पर अपनी विशिष्टता एवं प्रमाणिकता सिद्ध की है। उन्होंने किसी भी विषय का समर्थन या खण्डन प्रचुर युक्तियों सहित किया है। वे तार्किक, दार्शनिक और सहृदय व्यक्तित्व के धनी रहे हैं। जैनागम की सभी विधाओं पर उनका पूर्ण अधिकार था। प्रभाचन्द्र का ज्ञान गम्भीर और अगाध था। स्मरण-शक्ति भी तीव्र थी। उन्होंने अपनी रचनाओं में पूर्ववर्ती जैनाचार्यों के अलावा भारतीय दर्शन के अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, महापुराण, वैयाकरण, सांख्य-योग, वैशेषिक-न्याय, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, बौद्ध दर्शन एवं श्वेताम्बर ग्रन्थों आदि सैकड़ों ग्रन्थों के उद्धरण, सूक्तियाँ देकर अपने अगाध वैदुष्य का परिचय दिया है। माघ कवि के शिशुपालवध महाकाव्य, महाकवि वाणभट्ट की कादम्बरी, बौद्धाचार्य अश्वघोष के सौन्दरनन्द महाकाव्य एवं याज्ञवल्क्य स्मृति आदि के अनेक उद्धरण आपने

अपनी रचनाओं में दिये हैं। प्रभाचन्द्र व्याकरण शास्त्र के भी विशिष्ट ज्ञाता थे। उन्हें पातंजल महाभाष्य का तलस्पर्शी ज्ञान था।

प्रभाचन्द्र शुष्क दार्शनिक और तार्किक ही नहीं थे, उन्हें जीवनोपयोगी आयुर्वेद का भी ज्ञान था। उन्होंने प्रमेयकमलमार्तण्ड में बधिरता एवं अन्य कर्ण रोगों के लिए 'वलातैल' का उल्लेख किया है। न्यायकुमुदचन्द्र में छाया को पौद्गलिक सिद्ध करने हेतु उन्होंने वैद्यक शास्त्र का निम्नलिखित श्लोक प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किया। यह श्लोक राजनिघण्टु में कुछ पाठभेद के साथ पाया जाता है -

आतपः कटुको रूक्षः छाया मधुरशीतला।

कषायमधुरा ज्योत्स्ना सर्वव्याधिहरं (करं) तमः ॥

प्रमेयकमलमार्तण्ड में नड्वलोदक-तृण विशेष के जल से पाद रोग की उत्पत्ति बताई है। वैद्यकतंत्र में प्रसिद्ध, विशद, स्थिर, स्वर, पिच्छलत्व आदि गुणों से वैशेषिकों के गुण-पदार्थ का खण्डन किया है।

कल्पनाशीलता

प्रभाचन्द्र कल्पनाशील व्यक्तित्व के धनी थे। अकलंकदेव एवं अन्य आचार्यों ने वस्तु की अनन्तात्मकता या अनेक धर्माधारता की सिद्धि के लिए चित्रज्ञान, सामान्य-विशेष, मेचकज्ञान और नरसिंह आदि के दृष्टान्त दिये हैं। प्रभाचन्द्र ने इसके समर्थन में 'उमेश्वर' का दृष्टान्त दिया है। वे लिखते हैं जैसे - 'शिव' वामांग में उमा-पार्वती रूप होकर भी दक्षिणांग में विरोधी शिवरूप धारण करते हैं और अपने अर्धनारीश्वर रूप को दिखाते हुए अखण्ड बने रहते हैं उसी प्रकार एक ही वस्तु विरोधी दो या अनेक आकारों को धारण कर सकती है। इसमें कोई विरोध नहीं होना चाहिये। यह उद्धरण उनकी गहरी विचारशीलता और कल्पनाशीलता दर्शाता है।

उदात्त विचार एवं सर्वोदयी भावना

तार्किक प्रभाचन्द्र अत्यन्त उदार विचारवाले थे। वे व्यक्ति-स्वातंत्र्य एवं सर्वोदय की भावना के प्रबल समर्थक थे। आत्मधर्म धारण करने में जाति, वर्ण, गौत्र, वंश आदि कोई भी बाह्यतत्त्व बाधक नहीं है, ऐसी उनकी मान्यता थी। एकबार प्रभाचन्द्र ने शूद्रों को जैन दीक्षा दी। इससे राजपुरोहित बहुत कुपित हुआ और प्रकरण राजा भोज के समक्ष निर्णयार्थ पहुँचा। आचार्य प्रभाचन्द्र ने जन्मजात वर्ण-व्यवस्था की धज्जियाँ उड़ा दीं। उन्होंने कहा कि ब्राह्मणत्व नित्यत्व एवं ब्रह्मप्रभत्व रूप नहीं है। वर्ण-व्यवस्था

धर्म-व्यवस्था न होकर मात्र क्रिया-आधारित समाज-व्यवस्था है। यह जन्मना न होकर कर्मणा है। पद्मचरित्र के अनुसार वर्ण-व्यवस्था गुण-कर्म के अनुसार है, योनिनिमित्तक नहीं। ऋषिश्रृंग आदि में ब्राह्मण व्यवहार गुणनिमित्तक ही हुआ है। चातुर्वर्ण्य या चाण्डाल आदि व्यवहार सब क्रियानिमित्तक हैं (पद्मचरित्र-रविषेण, 11.198 से 205 श्लोक)। इसी के अध्याय 11 के 20वें श्लोक में व्रतधारी चाण्डाल को ब्राह्मण कहा है -

‘व्रतस्थमपि चाण्डालं तं देवा ब्राह्मणं विदुः’।

पूर्ववर्ती आचार्य जटासिंहनन्दि ‘वरांग चरित्र’ (25.11) में लिखते हैं कि - शिष्टजन वर्ण-व्यवस्था को अहिंसादिक व्रतों का पालन, रक्षा करना, खेती आदि करना तथा शिल्पवृत्ति इन चार प्रकार की क्रियाओं से ही मानते हैं। वर्ण-विभाजन सामाजिक व्यवस्था के लिए हैं, इसका अन्य कोई हेतु नहीं है।

जिनसेन आचार्य ने आदिपुराण पर्व 38, श्लोक 45-46 में कहा है कि जाति नामकर्म से तो सब की एक ही ‘मनुष्य जाति’ है। ब्राह्मण आदि चार भेद वृत्ति अर्थात् आचार-व्यवहार से है। व्रत-संस्कार से ब्राह्मण, शस्त्रधारण से क्षत्रिय, न्यायपूर्वक धन कमाने से वैश्य और सेवावृत्ति से शूद्र होते हैं।

आचार्य प्रभाचन्द्र ने कहा कि - जिन-जिन व्यक्तियों में जो-जो गुण-कर्म पाए जायेंगे उसी अनुसार उनमें ब्राह्मण आदि व्यवहार होगा और उसी अनुसार वर्ण-व्यवस्था चलेगी। जैनदर्शन व्यक्ति-स्वतंत्रतावादी है, पुरुषार्थ-विश्वासी है। शूद्र भी इसी जन्म में अपने पुरुषार्थ से सर्वोच्च मुनिदीक्षा ले सकता है। इसकी पुष्टि आचार्य प्रभाचन्द्र ने ‘न्यायकुमुदचन्द्र’ पृ. 778 में निम्नरूप से की है -

“क्रियाविशेषयज्ञोपवीतादिचिह्नोपलक्षिते व्यक्तिविशेषे तद्व्यवस्थायाः तद्व्यवहारस्य चोपपत्तेः। तत्र भवत्कल्पितं नित्यादिस्वभावं ब्राह्मण्यं कुतश्चिदपि प्रमाणात् प्रसिद्ध्यतीति क्रियाविशेष निबन्धन एवायं ब्राह्मणादिव्यवहारो युक्तः।”

अर्थ - जो व्यक्ति यज्ञोपवीत आदि चिह्नों को धारण करे तथा ब्राह्मणों के योग्य विशिष्ट क्रियाओं का आचरण करे उनमें ब्राह्मणत्व जाति से सम्बन्ध रखनेवाली वर्णाश्रम-व्यवस्था और तप-दान आदि व्यवहार भली-भाँति किये जा सकते हैं। अतः आपके द्वारा माना गया नित्य आदि स्वभाववाला ब्राह्मणत्व किसी भी प्रमाण से सिद्ध नहीं होता, इसलिये ब्राह्मण आदि व्यवहारों को क्रियानुसार ही मानना युक्ति-संगत है।

आचार्य प्रभाचन्द्र के उक्त विचार एवं तर्क-युक्ति सुनकर राजा भोज एवं पुरोहितराज निरुत्तर हुए। राजा भोज ने कहा कि शूद्रों की दीक्षा से चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है। इससे मानव जाति का कल्याण होगा। इस घटना से धारा नगरी के सभी जन हर्षविभोर हुए।¹

उक्त घटना एवं विचारों से आचार्य प्रभाचन्द्र के उदात्त विचार एवं सर्वोदयी भावना का ज्ञान होता है। वस्तुतः यह जैनधर्म का हार्द है जो सभी जीवों को आत्मकल्याण हेतु आमंत्रित करता है।

प्रभाचन्द्र की कृतियाँ

आचार्य प्रभाचन्द्र-कृत जो ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं उनमें अधिकांश व्याख्यात्मक-भाष्य रूप में हैं और कुछ स्वतंत्र ग्रन्थ हैं। उनकी कृतियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है -

1. **प्रमेयकमलमार्तण्ड** - आचार्य माणिक्यनन्दि ने अकलंकदेव के न्यायशास्त्रों का गहन मंथन कर 'परीक्षामुखसूत्र' की रचना की। इसके छह परिच्छेद में 212 सूत्र हैं। इसकी विषय-वस्तु प्रमाण और प्रमाणाभास का विवेचन है। आचार्य प्रभाचन्द्र ने भोजदेव के राज्य में धारानगरी में परीक्षामुखसूत्र पर विस्तृत व्याख्यात्मक भाष्य लिखा जो 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' के नाम से बहुश्रुत हुआ। जिस प्रकार सूर्य का उदय होने पर कमल-फूल विकसित होते हैं उसी प्रकार प्रमेयरूपी कमलों को प्रकाशित करने के लिए यह कृति मार्तण्ड (सूर्य) के समान है। इसलिए इसका प्रमेयकमलमार्तण्ड नाम सार्थक है। यह जैनदर्शन और न्याय का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसका प्रमाण बारह हजार श्लोक है। आचार्य प्रभाचन्द्र ने परीक्षामुख-सूत्रों की विस्तृत व्याख्या की है साथ ही तत्कालीन भारतीय दार्शनिकों एवं न्यायविदों के पक्षों एवं चर्चित विषयों पर अनेकान्त रूप से प्रमाणों द्वारा खण्डन करते हुए जैन न्याय को महिमामंडित किया है। ऐसा करते हुए उन्होंने वैदिक और अवैदिक दर्शनों के ग्रन्थों से वाक्य उद्धृत कर अपनी कृति को व्यापक रूप प्रदान किया। इस कारण यह भाष्य होकर भी स्वतंत्र रचना जैसा मौलिक ग्रन्थ बन गया है। आचार्य प्रभाचन्द्र ने इसमें अनेक सम्बद्ध विषयों पर विशद विवेचन किया है। उनमें निम्न विषय पठनीय/मननीय हैं - भूत-चैतन्यवाद, सर्वज्ञत्व विचार, ईश्वर-कर्तृत्व विचार, मोक्ष-स्वरूप विचार, केवलिभुक्ति विचार, स्त्रीभुक्ति विचार, वेद-अपौरुषेयत्व विचार, नैयायिकाभिमत सामान्य-स्वरूप विचार, ब्राह्मणत्व जातिनिरास, क्षणभंगवाद, वैशेषिकाभिमत आत्मद्रव्य विचार, जय-पराजय व्यवस्था आदि।

पण्डितप्रवर डॉ. महेन्द्रकुमारजी जैन न्यायाचार्य अतिश्रमसाधनापूर्वक 78 पृष्ठीय विस्तृत प्रस्तावनासहित सम्पादन कर इस ग्रन्थ की गूढ़-गम्भीरता प्रकाश में लाए। डॉ. साहब ने इस प्रस्तावना में पचास से अधिक वैदिक दार्शनिकों, बौद्ध दार्शनिकों, दिगम्बर-श्वेताम्बर परम्परा के ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों के उद्धरणों की समीक्षा कर आचार्य प्रभाचन्द्र के कर्तृत्व को गौरवान्वित किया है।

2. न्यायकुमुदचन्द्र - आचार्य प्रभाचन्द्र ने भट्ट अकलंकदेव कृत 'लघीयस्त्रय' और उसकी स्वोपज्ञविवृति की विस्तृत एवं विशद व्याख्या 'न्याय-कुमुदचन्द्र' नामक रचना में की है। प्रमेयकमलमार्तण्ड के अनुरूप न्याय-कुमुदचन्द्र भी न्यायरूपी कुमुदों का विकास करने के लिए चन्द्रमा के समान है। इसकी रचना राजा भोज के पुत्र श्री जयसिंह देव के राज्यकाल में धारानगरी में हुई। इसका आकार बीस हजार श्लोक-प्रमाण है। लघीयस्त्रय में कुल 78 कारिकाएँ हैं और तीन प्रवेश हैं - 1. प्रमाण प्रवेश, 2. नय प्रवेश, 3. प्रवचन प्रवेश। प्रमाण प्रवेश में 4 परिच्छेद हैं - 1. प्रत्यक्ष परिच्छेद, 2. विषय परिच्छेद, 3. परोक्ष परिच्छेद, 4. आगम परिच्छेद। नय प्रवेश में एक और प्रवचन प्रवेश में दो परिच्छेद हैं। इस प्रकार लघीयस्त्रय के व्याख्याकार ने कुल सात परिच्छेदों पर न्यायकुमुदचन्द्र व्याख्या लिखी है। प्रवचन प्रवेश में जहाँ तक प्रमाण और नय का वर्णन है वहाँ तक प्रभाचन्द्र ने छठा परिच्छेद तथा निक्षेप के वर्णन को सातवाँ परिच्छेद माना है।

आचार्य प्रभाचन्द्र ने भारतीय दर्शन के समग्र तर्क साहित्य एवं प्रमेय साहित्य का मंथन कर बोधगम्य शैली में उसका सार न्यायकुमुदचन्द्र में प्रस्तुत किया है। उन्होंने वात्स्यायन, उद्योतकर आदि वैदिक दार्शनिकों और धर्मकीर्ति आदि बौद्ध दार्शनिकों के मतों का निराकरण उनके ग्रन्थों के आधार पर अपनी विलक्षण तार्किक शैली में निष्पक्ष रूप से किया है और जैन-दार्शनिकों के मत की पुष्टि की है। व्याख्या में प्रकरण से सम्बन्धित अन्य विषयों की पूर्व-उत्तर पक्ष के रूप में चर्चा की है। इसकी भाषा ललित एवं निर्बाधप्रवाह है। प्रभाचन्द्र ने मर्मज्ञ व्याख्याकार अनन्तवीर्य और विद्यानन्दि का अनुसरण करने का प्रयास किया है।

प्रमेयकमलमार्तण्ड की रचना के बाद प्रभाचन्द्र के मानस में जो नवीन-नवीन युक्तियाँ आर्यी उनका निर्देश न्यायकुमुदचन्द्र में किया है और पुनरावृत्ति टालने हेतु प्रमेयकमलमार्तण्ड का संदर्भ दे दिया। न्यायकुमुदचन्द्र में प्रभाचन्द्र ने अपने स्वतंत्र प्रबन्धनों में बहुत-सी मौलिक बातें दर्शायीं, जैसे - वैभाषिक-सम्मत प्रतीत्यसमुत्पाद का खंडन,

प्रतिबिम्ब विचार तम और छाया द्रव्यत्व आदि। अपने अगाध पांडित्य की उपेक्षा करते हुए आचार्य प्रभाचन्द्र ने अपनी लघुता व्यक्त करते हुए लिखा -

बोधो मे न तथा विधोऽस्ति न सरस्वत्याप्रदत्तोवरः ।

साहायञ्च न कस्यचिद्ब्रचनतोऽप्यस्ति प्रबन्धोदये ॥

अर्थ - न मुझमें वैसा ज्ञान ही है और न सरस्वती ने ही कोई वर प्रदान किया है। तथा इस ग्रन्थ के निर्माण में किसी से वाचनिक सहायता भी नहीं मिल सकी है।

अपनी लघुता व्यक्त करना निर्मल परिणति के जैनाचार्यों की विशिष्ट सहज विशेषता है। आचार्य प्रभाचन्द्र उसके अपवाद कैसे हो सकते हैं?

यहाँ जैन न्याय के प्रसिद्ध मूर्धन्य विद्वान डॉ. महेन्द्रकुमारजी जैन न्यायाचार्य का उल्लेख करना समीचीन होगा जिन्होंने अतिप्रतिकूल परिस्थितियों में अनवरत श्रम-साधना एवं प्रखर बुद्धि से अपनी प्रथम सम्पादित कृति न्यायकुमुदचन्द्र का जनहितार्थ प्रकाशन किया। यह दो भागों में प्रकाशित हुई। प्रथम भाग की 126 पृष्ठों की प्रस्तावना श्री पण्डित कैलाशचन्द्रजी शास्त्री द्वारा लिखी गयी जबकि दूसरे भाग की 63 पृष्ठों की प्रस्तावना स्वयं डॉ. श्री महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य ने लिखी। यह उनके वैदूष्य एवं समर्पित साधना की सूचक है। वस्तुतः आचार्य प्रभाचन्द्र-समान श्री पण्डित महेन्द्रकुमारजी भी नित-स्मरणीय हो गये।

3. शब्दाम्भोज भास्कर - जैनेन्द्र व्याकरण पर आचार्य अभयनन्दि रचित महावृत्ति उपलब्ध है। इसी के आधार पर आचार्य प्रभाचन्द्र ने 'शब्दाम्भोज भास्कर' नामक जैनेन्द्र व्याकरण का महान्यास बनाया है। इसकी रचना श्री जयसिंह देव (राज्य 1056 से) के राज्य में न्यायकुमुदचन्द्र की रचना के बाद की गई है। श्रवणबेलगोल के शिलालेख नं. 40 (64) में प्रभाचन्द्र के लिए 'शब्दाम्भोज दिवाकरः' विशेषण भी दिया है। इससे सिद्ध होता है प्रभाचन्द्र ही 'शब्दाम्भोज भास्कर' नामक जैनेन्द्र व्याकरण महान्यास के कर्ता हैं। यह न्यास जैनेन्द्र महावृत्ति के बहुत बाद बनाया गया है। ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन (ब्यावर) में इसकी एक अधूरी प्रति प्राप्त हुई, जिसके आधार से इसका परिचय हुआ। इसमें जैनेन्द्र व्याकरण के मात्र तीन अध्याय का ही न्यास है। तृतीय अध्याय के अंत में निम्न श्लोक आया है जिसमें अभयनन्दि को नमस्कार किया है -

नमः श्री वर्धमानाय महते देवनन्दिने ।

प्रभाचन्द्राय गुरवै तस्मै चाभयनन्दिने ॥

शब्दाम्भोज भास्कर के तृतीय अध्याय के अन्त में पुष्पिका वाक्य इस प्रकार है -
इति प्रभाचन्द्रविरचिते शब्दाम्भोजभास्करे जैनेन्द्रव्याकरणमहान्यासे
तृतीयस्याध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ॥श्रीवर्धमानाय नमः ॥

प्रभाचन्द्र ने अभयनन्दि-सम्मत प्राचीन सूत्रपाठ पर ही उक्त महान्यास बनाया है। इसके सम्बन्ध में डॉ. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य का मत ज्ञातव्य है -

“व्याकरण जैसे शुष्क, शब्द-विषयक इस ग्रन्थ में प्रभाचन्द्र की प्रसन्न लेखनी से प्रसूत दर्शन शास्त्र की क्वचित् अर्थ-प्रधान चर्चा इस ग्रन्थ के गौरव को असाधारणतया बढ़ा रही है। इसमें विधि विचार, कारक-विचार, लिंगविचार जैसे अनूठे प्रकरण हैं जो इस ग्रन्थ को किसी भी दर्शन-ग्रन्थ की कोटि में रख सकते हैं। इसमें समन्तभद्र के युक्त्यनुशासन तथा अन्य अनेक आचार्यों के पद्यों को प्रमाणरूप से उद्धृत किया है। पृ. 91 में ‘विश्वदृशवाऽस्यपुत्रो जनिता’ प्रयोग का हृदयग्राही व्याख्यान किया है। इस तरह क्या भाषा, क्या विषय और क्या प्रसन्न शैली, हरएक दृष्टि से प्रभाचन्द्र का निर्मल और प्रौढ़ पांडित्य इस ग्रन्थ में उदात्त भाव से निहित है।”

4. तत्त्वार्थवृत्ति पद-विवरण - ब्राह्मणकुलोत्पन्न आचार्य पूज्यपाद ने ‘तत्त्वार्थ सूत्र’ पर तत्त्वार्थवृत्ति (सर्वार्थसिद्धि) नामक सिद्धान्त और दर्शनपरक टीका लिखी। इस तत्त्वार्थवृत्ति में तत्त्वार्थसूत्र के प्रत्येक सूत्र और उसके प्रत्येक पद का निर्वचन, विवेचन एवं शंका-समाधानपूर्वक व्याख्यान किया है। आचार्य प्रभाचन्द्र ने तत्त्वार्थवृत्ति के पद-पूरक या ग्रन्थ के रूप में ‘तत्त्वार्थवृत्ति पद-विवरण’ लिखा जिसमें तत्त्वार्थवृत्ति (सर्वार्थसिद्धि) के अप्रकट-विषम पदों का विवरण या स्पष्टीकरण है। प्रभाचन्द्र ने वृत्ति के कथन को पुष्ट करने के लिए अनेक पूर्ववर्ती प्राचीन एवं समवर्ती ग्रन्थों के वाक्यों को उद्धृत किया है। इस टिप्पण में प्रभाचन्द्र ने ‘तत्त्वार्थसूत्र’ की रचना की प्रेरक कथानायक ‘सिद्धय्य’ का नाम ही दिया है, किन्तु कथा नहीं दी। ‘तत्त्वार्थवृत्ति पद-विवरण’ सर्वार्थसिद्धि के हार्द को समझने में उपयोगी और पूरक है। इस ग्रन्थ में अप्रकट पदों के विवरण के साथ ही अन्य अनेक सैद्धान्तिक गुत्थियों पर विद्वत्तापूर्ण प्रकाश डाला गया है जो आचार्य प्रभाचन्द्र को दार्शनिक के साथ ही उच्चकोटि का सिद्धान्त-मर्मज्ञ होना भी सिद्ध करता है। इसमें कषाय-पाहुड सहित पचास से भी अधिक आगमिक ग्रन्थों के उद्धरण हैं। कुछ गाथाएँ ऐसी भी हैं जो उपलब्ध ग्रन्थों में अनुपलब्ध हैं। प्रत्येक अध्याय के टिप्पण अलग-अलग हैं जो तत्त्वार्थसूत्र के सूत्र का निर्देश करके दिये गये हैं जिससे उसे खोजने में कठिनाई नहीं होती। प्रत्येक अध्याय के टिप्पण की समाप्ति पर अध्याय की समाप्ति-सूचक सन्धि-वाक्य दिया है, यथा - ‘इति प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ।’

इस टिप्पण में गोम्मटसार ग्रन्थ से अनेक गाथाएँ उद्धृत हैं। आचार्य अमितगति के संस्कृत 'पंच संग्रह' का भी एक श्लोक उद्धृत है जिसे आचार्य अमितगति ने वि. सं. 1073 (ई. 1016) में समाप्त किया है। अतः इसके बाद ही प्रभाचन्द्र ने उक्त विवरण लिखा है।

5. प्रवचन-सरोज भास्कर - आचार्य कुन्दकुन्ददेव-कृत 'प्रवचनसार प्राभृत' की टीका है यह। ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, मुम्बई में इसकी पत्रात्मक प्रति है, इसमें 53 पत्र हैं - यह संवत् 1555 की लिखी प्रति है। इस प्रति में आचार्य अमृतचन्द्र के द्वारा प्रवचनसार टीका में अव्याख्यात 36 गाथाएँ अधिक हैं। आचार्य जयसेन ने 'प्रवचनसरोज भास्कर' टीका का ही अनुकरण किया है, यद्यपि उनकी टीका में दो-तीन गाथाएँ अतिरिक्त भी हैं। इस टीका में जगह-जगह उद्धृत दार्शनिक अवतरण-व्याख्या- पद्धति एवं सरल प्रसन्न शैली यह सिद्ध करने को पर्याप्त है कि यह न्याय- कुमुदचन्द्र के रचयिता प्रभाचन्द्र की कृति है। इस टीका का लक्ष्य है गाथाओं का संक्षेप में खुलासा करना, अतएव टीका में गाथाओं का केवल शब्दार्थ-रूप व्याख्यान है। ग्रन्थ की अवान्तर सन्धियों में तथा अन्त में यह नाम पाया जाता है। यथा - 'इति श्री प्रभाचन्द्रविरचिते प्रवचनसारसरोजभास्करे शुद्धोपयोगाधिकारः समाप्तः।'

टीका अति संक्षिप्त होते हुए भी विशद है। अभी यह अप्रकाशित है।

6. पंचास्तिकाय प्रदीप - आचार्य कुन्दकुन्द-कृत पंचास्तिकाय प्राभृत पर भी आचार्य प्रभाचन्द्र ने टीका लिखी, जिसकी विशेषता 'प्रवचनसरोज-भास्कर' जैसी है। इसकी मध्य की सन्धियों का पुष्पिका लेख इस प्रकार है - यथा -

'इति श्री प्रभाचन्द्रविरचिते, पंचास्तिकायप्रदीपे मोक्षमार्गनवपदार्थ-चूलिकाधिकारः समाप्तः।' पण्डित श्री कैलाशचन्द्रजी शास्त्री के मतानुसार आचार्य प्रभाचन्द्र ने समयसार पर भी टीका लिखी। इन टीकाओं का अभी तक प्रकाशन नहीं हुआ है।³

7. द्रव्यसंग्रह वृत्ति - 'प्रवचनसरोज-भास्कर' एवं 'पंचास्तिकाय प्रदीप' की शैली में रचित 'द्रव्यसंग्रह वृत्ति' भी प्राप्त हुई है। पण्डित श्री कैलाशचन्द्रजी के मतानुसार यह आचार्य प्रभाचन्द्ररचित है। इसमें प्रत्येक गाथा का खण्डान्वय के साथ संस्कृत में

शब्दार्थ मात्र दिया है और यत्र-तत्र आवश्यकतानुसार कुछ विशेष कथन भी किया है। इन टीकाओं में प्रभाचन्द्र ने अपने गुरु पद्मनन्दि का उल्लेख नहीं किया है। श्रुत मुनि ने अपनी 'प्राकृतभाव त्रिभंगी' की प्रशस्ति में अभयचन्द्र और प्रभाचन्द्र को 'शास्त्र-गुरु' बताया है। प्रशस्ति के अंत में प्रभाचन्द्र मुनि को 'सारत्रय निपुण' (प्रवचनसार, समयसार और पंचास्तिकाय), 'शुद्धात्मरत', 'विरहित परभाव' आदि कहा है। डॉ. उपाध्ये इन्हीं प्रभाचन्द्र को उक्त तीनों टीकाओं का कर्ता बतलाते हैं। इन टीकाओं की व्याख्या शैली एक-जैसी है। इनमें दिया गया एक भी उद्धरण ऐसा नहीं है जो प्रभाचन्द्र के परवर्ती समय का हो। इस दृष्टि से इन्हें दार्शनिक प्रभाचन्द्र की कृतियाँ मानने में कोई विरोध नहीं है।

8. महापुराण टिप्पण - महाकवि पुष्पदन्त ने अपभ्रंश भाषा में महापुराण (आदिपुराण और उत्तरपुराण) की रचना सन् 965 ई. में की थी। आचार्य प्रभाचन्द्र ने तत्त्वार्थवृत्ति के समान महापुराण पर भी एक टिप्पण ग्रन्थ रचा। यह उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा और गुण-ग्राहकता का परिचायक है। महापुराण के इस टिप्पण की श्लोक संख्या 3300 में बतलाई गई है। इसका आदि मंगलाचरण निम्न प्रकार है -

प्रणम्यवीरं विबुधेन्द्र संस्तुतं, निरस्तदोषं वृषभं महोदयम् ।

पदार्थ संदिग्धजन-प्रबोधकम्, महापुराणस्य करोमि टिप्पणम् ॥

इति श्रीप्रभाचन्द्रविरचित आदिपुराण-टिप्पणकम् पंचास श्लोकहीनं सहस्रद्वय परिमाणं परिसमाप्ता ॥

'महापुराण टिप्पण' की रचना श्री जयसिंहदेव के शासन-काल में हुई, जैसा कि उत्तरपुराण के अंतिम पुष्पिका वाक्य से सिद्ध होता है।⁴

9. क्रियाकलाप टीका - ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, मुम्बई से प्राप्त इसकी हस्तलिखित प्रति की अन्तिम प्रशस्ति से स्पष्ट होता है जिन प्रभाचन्द्र ने 'क्रियाकलाप टीका' रची है वे पद्मनन्दि सैद्धान्तिक के शिष्य थे। न्यायकुमुदचन्द्र आदि के कर्ता प्रभाचन्द्र भी पद्मनन्दि सैद्धान्तिक के ही शिष्य थे, अतः 'क्रियाकलाप टीका' के कर्ता प्रभाचन्द्र ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता। प्रशस्ति-श्लोकों की शैली भी 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' आदि की प्रशस्तियों से मिलती-जुलती है।

10. आराधना गद्य कथाकोष - संस्कृत भाषा की 'गद्य कथाकोष' आचार्य प्रभाचन्द्र की स्वतंत्र कृति है जिसमें 89 कथाएँ हैं। इस कथाकोष के अन्त में

‘श्री जयसिंहदेव राज्ये’ लिखा है। गद्य कथाकोष और प्रभाचन्द्र-कृत न्यायकुमुदचन्द्र आदि के प्रशस्ति-श्लोकों में पूर्ण सादृश्य है। इससे यह प्रकट होता है कि गद्य कथाकोष आचार्य प्रभाचन्द्र द्वारा ही रचित है। यह उल्लेखनीय है कि ग्रन्थ-समाप्ति के बाद भी कुछ कथाएँ लिखी हैं। और अन्त में ‘सुकोमलै सर्वसुखावबोधैः’ श्लोक तथा ‘इति भट्टारक प्रभाचन्द्रकृतः कथाकोष समाप्तः’ यह पुष्पिका लेख है। ऐसा लगता है कि प्रभाचन्द्र ने प्रारंभ की 89 कथाएँ ही बनाई हों और बाद की कथाएँ किसी दूसरे भट्टारक प्रभाचन्द्र ने रची हों। इस सम्बन्ध में अनुसंधान अपेक्षित है।

11. समाधितंत्र टीका - आचार्य पूज्यपाद-कृत ‘समाधितंत्र’ अध्यात्म विषयक सुन्दर रचना है, इसमें 105 पद्य हैं। इसकी विषय-वस्तु आचार्य कुन्दकुन्द के पंच परमागम के ग्रन्थों से ग्रहण की गयी है। इसके अनेक पद्य आचार्य कुन्दकुन्द-कृत पद्यों के रूपान्तरण जैसे प्रतीत होते हैं। इसमें बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा के स्वरूप का विस्तृत विवेचन कर शुद्धात्मा/परमात्मा होने का उपाय दर्शाया है। आचार्य प्रभाचन्द्र ने इस अध्यात्मपरक ग्रन्थ पर अपनी लेखनी चलाकर अपने बहुआयामी व्यक्तित्व को प्रदर्शित किया है। इसकी रचना-शैली और न्यायकुमुदचन्द्र की शैली समान है जो इस बात का सूचक है कि यह टीका भी आचार्य प्रभाचन्द्र-कृत है। आचार्यकल्प पण्डित जुगलकिशोर मुख्तार इन्हें किसी अन्य प्रभाचन्द्र की मानते हैं जो पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता।

12. रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका - आचार्य समन्तभद्र-कृत ‘रत्नकरण्ड श्रावकाचार’ चरणानुयोग की महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमें 150 पद्यों में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप बताते हुए सल्लेखना को श्रावक के व्रतों में सम्मिलित करते हुए श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन है। व्यक्ति को नैतिक धरातल में प्रतिष्ठित करा उसे धार्मिक जीवनयापन के सुखी होने की विधि इस ग्रन्थ में दर्शायी है।

आचार्य समन्तभद्र ने अपनी सर्वोदयी विचारणा के अनुरूप सम्यग्दर्शन-युक्त चाण्डाल को देव-समान घोषित किया है। साथ ही मोही मुनि से निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ बताया है। आचार्य प्रभाचन्द्र ने आचार विषयक इस ग्रन्थ पर टीका लिखी। रत्नकरण्ड श्रावकाचार की टीका तथा समाधितंत्र की टीका में प्रमेयकमल मार्तण्ड आदि में प्रयुक्त विशिष्ट शैली की समानता यह सूचित करता है कि ये टीकाएँ भी प्रसिद्ध दर्शनिक प्रभाचन्द्र द्वारा रचित हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि प्रभाचन्द्र-कृत गद्य कथा कोष में वर्णित अंजन चोर आदि की कथाओं से रत्नकरण्ड टीका की कथाओं का सदृश्यपना

भी इस तथ्य की पुष्टि करता है। श्री मुख्तारसा. इसे किसी अन्य प्रभाचन्द्र की मानते हैं, जो अपुष्ट एवं असिद्ध है।

13. शाकटायन न्यास - यापनीयसंघाग्रणी शाकटायनाचार्य ने 'शाकटायन व्याकरण' निर्मित किया था। इन्होंने केवलिभुक्ति और स्त्रीमुक्ति के प्रकरण लिखे हैं। आचार्य प्रभाचन्द्र ने अपनी टीकाओं में इन दोनों प्रकरणों का खंडन आनुपूर्वी से किया है। न्यायकुमुदचन्द्र में स्त्रीमुक्ति प्रकरण से एक कारिका भी उद्धृत की है। शाकटायनाचार्य के 'शाकटायन व्याकरण व्याख्या' ग्रन्थ को श्री पण्डित कैलाशचन्द्रजी शास्त्री द्वारा आचार्य प्रभाचन्द्र-कृत माना गया है। इस ग्रन्थ में मंगल श्लोक नहीं है। सन्धियों के अन्त में या ग्रन्थ में कहीं भी प्रभाचन्द्र का नामोल्लेख न होने तथा उक्तानुसार विचार-विरोधी होने के कारण श्री डॉ. महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य इस टीका को आचार्य प्रभाचन्द्रकृत नहीं स्वीकारते। प्रभाचन्द्र ने अपनी न्याय-ग्रन्थ टीकाओं में 'जैनेन्द्र व्याकरण' से ही सूत्रों के उद्धरण दिये हैं। शाकटायन व्याकरण से एक सूत्र भी उद्धृत नहीं किया। उन्होंने अपनी किसी टीका ग्रन्थ में भी इसका उल्लेख नहीं किया जैसा कि प्रायः वे करते रहे हैं। हो सकता है स्वयं शाकटायन ने अपने ही व्याकरण पर न्यास लिखा हो।

14. आत्मानुशासन तिलक - 'आत्मानुशासन' उत्तरपुराण के रचयिता आचार्य गुणभद्र की सुन्दर कृति है। इसमें भर्तृहरि के 'वैराग्य शतक' की शैली में रचित 272 श्लोक हैं। यह ग्रन्थ ज्ञान और वैराग्य का पोषण करनेवाला महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसकी संस्कृत टीका आचार्य प्रभाचन्द्र ने की है। आचार्य-कल्प पण्डित टोडरमलजी ने इसकी देशीभाषामय टीका लिखी। जैन समाज में 'आत्मानुशासन' ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। प्राप्त आत्मानुशासन तिलक के अन्त में निम्न प्रशस्ति लिखी है -

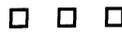
इति श्री आत्मानुशासन (नं) सतिलक (कं) प्रभाचन्द्राचार्य विरचित (तं) सम्पूर्णम्। 'स्वयंभू स्तोत्र टीका' भी आपकी मानी जाती है जिसकी पुष्टि होना शेष है।

दक्षिण देश में जन्मे आचार्य प्रभाचन्द्र उत्तर की धारानगरी को अपना कर्म-स्थल बनाकर जिनेश्वरी दीक्षा अनुरूप ज्ञान, ध्यान और तप तथा स्वाध्याय, साहित्य-सृजन में अपनी आत्मीक शक्तियों का उपयोग करते हुए अमर हो गये। उनके कर्तृत्व की कीर्ति से उनकी रचनाओं के सम्पादक एवं पाठकगण भी अपने आत्म-वैभव के स्वरूप को समझकर बौद्धिक प्रमाणिकता सहित कृतार्थ हो रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। इनके समकालीन राजा भोज और राजा जयदेवसिंह भी अपनी सहिष्णुता, गुणग्राहकता आदि गुणों के कारण प्रसिद्धि प्राप्त हैं, किन्तु उनके द्वारा निर्मित भव्य महल धूस-धूसरित

हो गये। उस काल के जिनमन्दिर, आगम आदि भी काल-प्रवाह में मिट गये या किसी वास्तुविद के ज्ञान के शिकार हो गये। इसके साथ ही उनके निर्माताओं की उदात्त भावनाएँ भी हिंस भावनाओं में लुप्त हो गयी। किन्तु वीतराग मार्ग में निष्ठापूर्वक समर्पित व्यक्तित्व इहलोक में स्वतः अमरता को प्राप्त हैं, जैसे आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य प्रभाचन्द्र आदि। जड़ के ऊपर चैतन्य शक्ति की यही विशिष्टता है। इसी कारण जिनेश्वरी दीक्षा भी लोक में गौरव को प्राप्त है। ज्ञानी भव्यजन इस रहस्य को समझते हैं।

-
1. डॉ. महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्य स्मृति ग्रन्थ, भाग-4, पृष्ठ 383-386 के आधार पर संकलित।
 2. डॉ. महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्य स्मृति ग्रन्थ, 4.180।
 3. जैन साहित्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृष्ठ 347।
 4. पाटोदी मंदिर, जयपुर की प्रति।

बी-369, ओ.पी.एम. कॉलोनी,
पो.ऑ. - अमलाई पेपर मिल्स,
अमलाई (म.प्र.)



न्याय

* निश्चितं च निर्बाधं च वस्तुतत्त्वमीयतेऽनेनेति न्यायः।

- न्यायविनिश्चयविवरण, भाग-1

- जिसके द्वारा वस्तु का निश्चित और निर्बाध ज्ञान होता है उसे 'न्याय' कहते हैं।
अर्थात् जिसके द्वारा वस्तु-स्वरूप का सम्यक् ज्ञान हो उसे 'न्याय' कहते हैं।

* नय-प्रमाणात्मिका युक्तिर्न्यायः।

- प्रमेयरत्नमाला, पृ. 4. टिप्पणी

* प्रमाण-नयात्मको न्यायः।

- न्याय प्रमाण और नय रूप है (क्योंकि वस्तुस्वरूप का सम्यक् ज्ञान प्रमाण और नय के द्वारा होता है।)

* प्रमाणनयैरधिगमः।1.6।

- तत्त्वार्थसूत्र

- प्रमाण और नयों से पदार्थों का ज्ञान होता है।

परीक्षामुख - यह जैन न्याय-जगत का प्रथम सूत्रग्रन्थ है। इसके रचनाकार हैं आचार्य माणिक्यनन्दि (11वीं शती)। आचार्य लघु अनन्तवीर्य (12वीं शती) ने 'परीक्षामुख' की टीका की जो 'प्रमेयरत्नमाला' नाम से प्रसिद्ध है। इस 'परीक्षामुख' पर ही आचार्य प्रभाचन्द्र ने 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' नाम की एक बृहद् टीका लिखी।

प्रभाचन्द्र नाम के कुछ जैन विद्वान

- पण्डित कुन्दनलाल जैन*



जैन साहित्य के इतिहास में प्रभाचन्द्र नाम के लगभग 20 विद्वान मिलते हैं पर उनकी प्रसिद्धि हमारे लेख के नायक 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' तथा 'न्यायकुमुदचन्द्रादि' ग्रन्थों के रचयिता 'श्री प्रभाचन्द्र' से भिन्न है। नीचे प्रभाचन्द्र नाम के अन्य विद्वानों का संक्षिप्त परिचय देकर अपने लेख के नायक प्रभाचन्द्र का विस्तृत व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर कुछ रोचक सामग्री प्रस्तुत करूँगा।

स्व. पण्डित परमानन्दजी ने अपने इतिहास ग्रन्थ में केवल चार प्रभाचन्द्रों का उल्लेख किया है। जैन साहित्य के इतिहास को प्रामाणिक तथा सम्पूर्ण तथ्यों से युक्त बनाना बड़ी टेढ़ी खीर है। हमारे आचार्यों-विद्वानों तथा भट्टारकों ने इतने विशाल साहित्य की रचना की है जिनको हमने, उनके उत्तराधिकारियों ने सुरक्षित नहीं रखा। कुछ धार्मिक उन्मादवश दोनों संप्रदायों के विशाल साहित्य को जला दिया या नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। दूसरे हमारे आचार्यों ने ग्रन्थ रचना तो की पर उसमें अपने बारे में समय, राज्य, गुरु, स्थान आदि ऐतिहासिक तथ्यों की सर्वथा उपेक्षा की है। बड़े-बड़े उच्च कोटि के

* यह सूचित करते हुए दुःख है कि इस लेख के लेखक अब हमारे बीच विद्यमान नहीं हैं।

आचार्य विद्वान स्व-परिचय लिखने में संकोच करते रहे हैं। कुन्दकुन्दादि आचार्य-परम्परा में प्रायः सभी श्रेष्ठ मनीषी विद्वानों ने ग्रन्थ समाप्त कर ऐतिहासिक संकेतों के विषय में कुछ भी नहीं लिखा। आज हम-जैसे शोधार्थी जब उनके विषय में लिखना चाहते हैं तो परमुखापेक्षी रहते हैं। यदि कोई प्रामाणिक सामग्री एकत्र करते हैं तो बहुत पापड़ बेलने पड़ते हैं। तीसरे, हम लोगों की उपेक्षा ने और प्रेस के विकास ने पुरानी पांडुलिपियों को दीमक तथा सफेद कीटों के भरोसे छोड़ दिया जिससे आज हम 'गंधहस्तिभाष्य' जैसे बहुमूल्य ग्रन्थों के लिए तड़प रहे हैं।

अब हम अन्य प्रभाचन्द्रों का सांकेतिक परिचय देकर अपने नायक के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर कुछ प्रकाश डालेंगे।

1. सबसे पहले उन 'प्रभाचन्द्र' के विषय में जानते हैं जो 'चन्द्रगुप्त' नाम से भी प्रथित थे। जब आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने उज्जैन में 12 वर्ष के घोर अकाल की भविष्यवाणी की तो समस्त संघ उत्तर से दक्षिण की ओर गमन कर गया और वहाँ एक समृद्ध जनपद में ठहरा। इनमें से आचार्य प्रभाचन्द्र ने अपनी आयु अति अल्प शेष जानकर कटवप्र नामक शिखर पर समाधि धारण कर ली। शेष संघ आगे बढ़ गया। यह उल्लेख चन्द्रगिरि पर्वत की पार्श्वनाथ वसदि के दक्षिण ओर के शिलालेख में अंकित है। यह तथ्य जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग की भूमिका के 62 पृष्ठ पर अंकित है। यह लेख लगभग शक सं. 522 में लिखा गया है। अर्थात् सम्राट् चन्द्रगुप्त आचार्य भद्रबाहु से दीक्षित हो 'प्रभाचन्द्र' नाम से विख्यात हुए, ऐसा अनुमानित किया जाता है।

2. दूसरे 'प्रभाचन्द्र' 'आचार्य मेघचन्द्र' के शिष्य हैं जिनका उल्लेख चन्द्रगिरि के सवति गन्धवारण बस्ती के प्रथम मण्डप के एक स्तम्भ पर अंकित है जो लगभग 1146 ई. का है। यह शिलालेख श्लोकों में है -

त्रैविद्य-योगीश्वरमेघचन्द्रस्याभूत्प्रभाचन्द्र, मुनिस्सुशिष्यः

शुम्भद्व्रताम्भोनिधिपूर्णचन्द्रो निर्द्धूतदण्डत्रितयोविशल्यः ॥43 ॥

त्रैविद्योत्तममेघचन्द्रसुतपः पीयूषवारासिजः

सम्पूर्णाक्षयवृत्तनिर्मलतनुः पुष्यद्भुधानन्दनः।

त्रैलोक्यप्रसरद्यशः शुचिरुचिः यः प्रार्थ्यपोषागमः,

सिद्धान्ताम्बुधिवर्धनो विजयतेऽपूर्वप्रभाचन्द्रमाः ॥44 ॥

संसाराम्भोधिमध्योत्तरण करणयानरत्नत्रयेशः ।
सम्यग्जैनागामार्थान्वितविमलमतिः श्रीप्रभाचन्द्रयोगी ॥45 ॥

सकलजनविनूतं चारुबोधनेत्रम्,
सुकरकविनिवासं भारतीनृत्यरङ्गम् ।
प्रकटितनिजकीर्तिं दिव्यकान्तामनोजं,
सकलगुणगणेन्द्र श्रीप्रभाचन्द्रदेवं ॥46 ॥

इन्हीं प्रभाचन्द्र की शिष्या शान्तलादेवी थीं जो होयसल वंश के राजा विष्णुवर्धन (विट्टिदेव) की पटरानी थीं। इनका स्वर्गवास 1146 ई. के आसोज सुदी 10, बृहस्पतिवार को हुआ था, उसी की स्मृतिस्वरूप यह शिलालेख लिखा गया था।¹

3. तीसरे 'प्रभाचन्द्र' 'आचार्य चतुर्मुख' के शिष्य थे। इनका शिलालेख चन्द्रगिरि के कत्तिले बस्ती के द्वार से दक्षिण की ओर एक प्रस्तर स्तंभ पर अंकित है जो लगभग शक सं. 1022 में अर्थात् 1100 ई. में उत्कीर्णित किया गया था। ये धाराधीश राजा भोजराज से सम्मानित किये गये थे। ये मूल संघदेशीय गण वक्रगच्छ के पण्डित प्रवर थे। ये दाक्षिणात्य थे।

श्रीधाराधिपभोजराज-मुकुट-प्रोताश्मरश्मिच्छटा,
च्छायाकुङ्कुमपंकलिप्त-चरणाम्भोजात-लक्ष्मीधवः ।
न्यायाब्जाकरमण्डने दिनमणिश्शब्दाब्जरोदोमणि,
स्थेयात्पण्डितपुण्डरीक-तरणि श्री मान्प्रभाचन्द्रमाः ॥17 ॥
श्री चतुर्मुखदेवानां शिष्योऽधृष्यः प्रवादिभिः ।
पंडितश्रीप्रभाचन्द्रो रुद्रवादि-गजाङ्कुशः ॥18 ॥²

4. चौथे 'प्रभाचन्द्र' सिद्धान्तचक्रवर्ती श्री आचार्य नयकीर्ति सिद्धान्तदेव के शिष्य थे, जो मूल संघ, कुन्दकुन्दान्वय देशीयगण पुस्तकगच्छ के आचार्य थे। नागदेव हेगडे नामक व्यक्ति ने 'नागसमुद्र' नामक सरोवर और एक उद्यान बनवाया था। इन्होंने अपने गुरु नयकीर्ति आदि के साथ उसे उन्हें ही सौंप दिया था कि वे गोमटदेव की अष्ट विधि पूजन के लिए चार गद्याण (तत्कालीन प्रचलित स्वर्ण-मुद्रा) दिया करे।

यह उल्लेख (लगभग शक सं. 1122 अर्थात् 1200 ई.) विन्ध्यगिरि पहाड़ी के दक्षिणमूल में एक चट्टान पर अंकित है।³

5. पाँचवें 'प्रभाचन्द्र' दामनन्दि त्रैविद्यदेव के शिष्य थे। यह तथ्य श्रवणबेलगोला के नगर जिनालय में उत्तर की ओर शक सं. 1118 ई. के अंकित एक लेख से पता चलता है।⁴

6. छठे, 'प्रभाचन्द्र' कुलभूषण आचार्य के शिष्य थे और वे पद्मनन्दि सैद्धान्ति के शिष्य थे, (शक सं. 1085 - 1163 ई.)।

तच्छिष्यः (कौमारदेव) कुलभूषणाख्य यति ।

पश्चाच्चरित्र वारान्निधिस्सिद्धन्ताम्बुधिपारगोनतविनेयस्तत्सधर्मो महान ।

शब्दाम्भोरुह भास्करः प्रथिततर्क ग्रन्थकारः प्रभा,

चन्द्राख्यो मुनिराज पंडितवरः श्रीकुन्दकुन्दान्वय ॥16 ॥⁵

7. भाद्रपद सुदि 5, आदिवार, शक सं. 1197 अर्थात् 1275 ई. में प्रभाचन्द्र भट्टारक देव के शिष्य आदियण्ण ने गोमट्टदेव के नित्याभिषेक के लिए चार 'गद्याण' (तत्कालीन प्रचलित स्वर्णमुद्रा) का दान कराया था, जिसमें एक 'होन' (तत्कालीन मुद्रा) पर एक 'हाग' (मुद्रा) मासिक ब्याज से एक बल्ल (माप) दूध प्रतिदिन दिया जाना चाहिए। ये सातवें 'प्रभाचन्द्र' हैं।⁶

8. आठवें 'प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेव' ने कोङ्गल्लनरेश अदूरादित्य द्वारा बनवाये गये चैत्यालय की पूजन हेतु तरिगलनि (ग्राम विशेष) की 42 खण्डुगभूमि दान कराई थी। ये प्रभाचन्द्र 'उभय सिद्धान्त रत्नाकर' की उपाधि से विभूषित थे।⁷

9. नौवें 'प्रभाचन्द्र' भट्टारक जिनचन्द्र के शिष्य थे। ये बलात्कारण दिल्ली-जयपुर पट्ट के आचार्य थे। इनके समय में यह संघ अटेर शाखा और नागौर शाखा में विभाजित हो गया था। इनका समय सं. 1571 से 1580 का है।⁸

10. दशवें 'प्रभाचन्द्र' बालचन्द्र के शिष्य थे। कंवदहल्लि के शिलालेख में उल्लेख है -

आदावनंत वीर्यस्तच्छिष्यो बालचन्द्रमुनिमुख्य -

स्तत्सुनुर्जितमदनः सिद्धान्ताम्भोनिधिः प्रभाचन्द्रः ॥12 ॥⁹

11. ग्यारहवें 'प्रभाचन्द्र' श्री ज्ञानभूषण के शिष्य थे। त्रेपन क्रिया विनती में लिखा है -

प्रभाचन्द्रसूरि एम कहेए जिनसासननी सिनगार।

ए वीनती भणे सुणे तेह घरि-जय-जयकार ॥9 ॥¹⁰

इनका समय सं. 1500 के लगभग है।

12. बारहवें 'प्रभाचन्द्र' ज्ञानभूषण के शिष्य थे। सुमतिकीर्ति द्वारा विरचित 'धर्मपरीक्षारास' में इनका उल्लेख है।

तस पट्टे पट्टोधर ज्ञानभूषण गुरुराय ।
आचारिज पद आपयु तेहना प्रणमूं पाय ॥
ह्र ह्र ह्र
तेह कुलकमल दिवसपति प्रभाचन्द्र यतिराय ।

इनका उल्लेख त्रैलोक्यसार-रास में भी है, एक पट्टावली में भी इनका उल्लेख है।¹¹

13. तेरहवें 'प्रभाचन्द्र' आचार्य पद्मनदी के शिष्य हैं जिन्होंने 'श्रावकाचार सारोद्धार' नामक ग्रन्थ रचा है, इनकी दूसरी रचना 'वर्द्धमानचरित्र' नामक ग्रन्थ है। इसकी फागुन वदी सप्तमी (7) की एक प्रति सूरत के गोपीपुरा मंदिर में तथा ईडर के शास्त्र भंडार में विद्यमान है। यथा -

अहंकार स्फारी भव दमित वेदान्त विबुधोः-
ल्लसत्सिद्धान्त श्रेणी क्षपण-निपुणोक्ति द्युतिभरः
अधीती जैनेन्द्रऽजनि रजनिनाथ-प्रतिनिधिः
प्रभाचन्द्रः सान्द्रोदयशमितापद्यतिवरः ॥2 ॥¹²

14. चौदहवें 'प्रभाचन्द्र' भट्टारक वादिराज के शिष्य थे जिन्होंने 'ज्ञान सूर्योदय' नामक नाटक माघ सुदी 8 सं. 1648 को मधुक नगर में रचा था। यथा -

तत्पट्टामल भूषणं समभवद् दैगम्बरीये मते ।
चंचद्रहंकरः स भाति चतुरः श्री मत्प्रभाचंद्रमा ॥¹³

15. पन्द्रहवें 'प्रभाचन्द्र' को ब्र. श्रुतसागर ने मुक्तावली व्रत-कथा के प्रथम मंगलाचरण में नमस्कार किया है। यथा -

प्रभाचन्द्राऽकलंकैष्टविद्यानन्दीडितक्रमाम् ।
जीवन्मुक्तावलीं नत्वा वक्ष्ये मुक्तावली व्रतम् ॥1 ॥

16. सोलहवें 'प्रभाचन्द्र' वे थे जो भट्टारक जिनचन्द्र के पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। इनके शिष्य का नाम धर्मचन्द्र था। पण्डित जिनदास ने 'होलीरेणुका चरित्र' की प्रशस्ति में सं. 1608, ज्येष्ठ सुदी 10, शुक्रवार को उपर्युक्त ग्रन्थ के अन्त में प्रभाचन्द्र का नाम दिया है। यथा -

अकारि ग्रन्थःपूर्णोऽयम् नाम्ना दृष्टिप्रबोधकः
 श्रेयसे बहु पुण्याय मिथ्यात्वापोह हेतवे ॥62॥
 भट्टारक प्रभाचन्द्र शिष्यो यो विद्यते भुवि ।
 अनेक गुणसम्पन्नो धर्मचन्द्रामिधो मुनिः ॥63॥¹⁴

17. सत्रहवें 'प्रभाचन्द्र' वे थे जिन्होंने 'पंचास्तिकाय प्रदीप' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। प्रशास्ति के अंत में लिखा है -

सन्मार्गतत्व विविधार्थ मणिप्रकाशः श्री मत्प्रभेन्दु रचितो न विदन्त रर्थ्यः ।

ज्योतिप्रभा-प्रहतमोहमहान्धकारः पंचास्तिकाय भुवने ज्वलित प्रदीपः ॥¹⁵

18. अठारहवें 'प्रभाचन्द्र' वे हैं जो भट्टारक ललितकीर्ति कृत 'यशोधर चरित्र' की प्रशास्ति में उल्लिखित हैं।¹⁶

19. भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति द्वारा स्थापित भट्टारक पट्टावली -

संवत् 1706 वर्षे ज्येष्ठ सुदी पंचमी दिवसे रविवासरे श्री मूलसंधाम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दान्वये भ. श्री पद्मनन्दि देवास्तत्पट्टे भ. शुभचन्द्र देवास्तत्पट्टे भ. श्री जिनचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ. प्रभाचन्द्र देवास्तत्पट्टे श्री देवेन्द्रकीर्ति देवास्तत्पट्टे देवेन्द्रकीर्ति देवास्तत्पट्टे भ. नरेन्द्रकीर्ति देवास्तदाम्नाये चम्पावती नगर समीपवर्ते च गावि नाम्नि स्थले श्री नेमिनाथचैत्यालये महाराजश्री जयसिंह राज्य प्रवर्तमाने भ. श्री नरेन्द्रकीर्तिदेवाभिः पट्टावली स्तम्भ, कर्मक्षयार्थ कारायिता । चम्पावती श्रावकानं नित्य-प्रणमति । शुभं भूयात्/कल्याणमस्तु/वर्द्धतां जिनशासनं ।

17 पंक्तियोंवाला यह पट्टावली स्तम्भ आमेर संग्रह में सुरक्षित है। इसमें भट्टारक जिनचन्द्र के शिष्य भट्टारक प्रभाचन्द्र का उल्लेख है। इन्हीं की शिष्य-परम्परा में भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति ने सं. 1716 में अम्बावती (आमेर) दुर्ग में तीर्थंकर विमलनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई थी जिसे मिर्जा राजा जयसिंह के मुख्यमंत्री मोहनदास भौसा (भाँवसा) ने बनवाया था। यह विशाल शिलालेख भी आमेर संग्रहालय में सुरक्षित है। उसमें भी पाँचवीं पंक्ति में प्रभाचन्द्र (प्रभेन्दु) का उल्लेख है। अतः भट्टारक प्रभाचन्द्र आमेर पट्ट के प्रतिष्ठित भट्टारक विद्वान रहे हैं जिनका समय सं. 1600 के आस-पास होना चाहिए।

20. बीसवें 'प्रभाचन्द्र' 'त्रैविद्य' शब्द से अलंकृत थे जो वीरपुर तीर्थ के अधिपति मुनि श्री रामचन्द्रजी त्रैविद्य के शिष्य थे। ये मंत्रवादी थे। चालुक्य राज्य सं. 48 (1142) ई.

अग्रहार ग्राम सेडिम के निवासी नारायण के भक्त थे। चौंसठ कलाओं के ज्ञाता ज्वालामालिनी देवी के भक्त तथा अभिचार होम के बल से कांचीपुर के फाटकों को तोड़नेवाले तीन सौ महाजनों ने सेडिम मंदिर बनवाकर तीर्थंकर शांतिनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित कराई थी तथा मंदिर पर स्वर्ण कलशारोहण कराया था। मंदिर की मरम्मत तथा नैमित्तिक पूजा के लिए 24 पत्तर प्रमाण (माप विशेष) भूमि, एक बगीचा और एक कोल्हू दान दिया था, ये मद्दुपगण के सूर्य, समस्त शास्त्रों के पारगामी मंत्रवादी आदि विशेषणों से युक्त थे।

जिनपति मततत्त्व रुचिर्नव्य प्रमाण प्रवीण निश्चित मति,
परहित चारित्र पात्रो प्रभाचंद्र यतिनाथः।
ख्यातस्त्रैविद्या पर नामा श्री रामचन्द्र मुनि तिलकः,
प्रिय शिष्यः त्रैविद्य प्रभेन्दु भट्टारको लोके ॥¹⁷

इनके अतिरिक्त और कई चमत्कारी प्रभाचन्द्र हुए हैं जो किंवदंतियों के रूप में प्रसिद्ध हैं।

अब हम अपने लेख के नायक 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' आदि ग्रन्थों के रचयिता आचार्य 'प्रभाचन्द्र' के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व की चर्चा करेंगे। इन प्रभाचन्द्र को जैन साहित्य के इतिहास में वही स्थान प्राप्त है जो समन्तभद्र स्वामी और अकलंकदेव को प्राप्त है। ये उच्च कोटि के उद्भट विद्वान् और मनीषी हैं। न्यायविद्या के विशेषज्ञ-मर्मज्ञ हैं और खण्डन-मण्डन में निष्णात हैं। तर्कशास्त्र की बारीकियों से ये भली-भाँति परिचित हैं। इनका समय मोटे रूप से ग्यारहवीं सदी का उत्तरार्द्ध तथा बारहवीं सदी का पूर्वार्द्ध आँका गया है। आदरणीय पण्डित कैलाशचन्द्रजी शास्त्री इन प्रभाचन्द्र का समय 950 से 1020 ई. तक मानते हैं, वहीं पण्डित महेन्द्रकुमारजी 'न्यायाचार्य' इनका समय 980 से 1065 ई. तक मानते हैं। जबकि डॉ. दरबारीलाल कोठिया ने 1043 ई. को इनका अन्तिम काल माना है। पाठको! 20वीं सदी के उद्भट विद्वानों ने अपने-अपने प्रमाणों से उपर्युक्त तिथियाँ निश्चित की हैं जो हम सबको मान्य हैं।¹⁸

ये प्रभाचन्द्र मूलसंघ और नन्दिगण की आचार्य परम्परा के प्रतिभाशाली प्रमुख आचार्य थे। इससे अनुमान होता है कि ये दाक्षिणात्य थे। उन दिनों धारा नगरी विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ विद्वानों से अलंकृत थी। वहाँ के नरेश धाराधिपति भोजराजदेव धारा नगरी के शासक थे और विद्वानों का सम्मान और आदर किया करते थे, वे स्वयं 'लक्षंददों' के शब्दों से अलंकृत थे। कोई भी कारण हो ये प्रभाचन्द्र भी धारानगरी में आ गये थे।

राजा मुंज, राजा भोज तथा राजा जयसिंह के शासन-काल में इन्होंने विशाल ग्रन्थों की रचना की थी। उन ग्रन्थों में ग्यारह ग्रन्थ टीका-व्याख्या के ग्रन्थ हैं, वे एक से एक उत्कृष्ट ग्रन्थ हैं। यद्यपि ये टीका-व्याख्या सहित ग्रन्थ हैं पर उन ग्रन्थों की मूल से कहीं उच्च विवृतियाँ हैं, अपनेआप में मूल ग्रन्थ से ज्यादा विशिष्टता प्राप्त हैं और ये सब मूल ग्रन्थों की अपेक्षा स्वयं में एक सर्वोच्च कोटि के ग्रन्थ बन गये हैं।

1. प्रभाचन्द्राचार्य की सर्वप्रथम श्रेष्ठ कृति 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' है जो धारा-नरेश भोजराज की राजधानी धारानगरी में पूर्ण हुई थी। यह माणिक्यनन्दि रचित 'परीक्षामुख' की विस्तृत-विशाल व्याख्या है। इसकी समाप्ति पर अंत में जो प्रशस्ति वाक्य है उससे प्रभाचन्द्राचार्य, और भोजराज के शासनकाल की सुनिश्चित तिथियों का स्पष्ट ज्ञान होता है -

“श्री भोजराजदेव-राज्ये श्रीमद्धारानिवासिना-
श्री प्रभाचन्द्रपण्डितेन निखिल-प्रमाण-प्रमेयं
स्वरूपोद्योत परीक्षामुख पदमिदं विवृतमिति।”¹⁹
श्री धाराधिप भोजराजमुकुट प्रोतारम् रश्मिच्छटा-छाया-
स्थेयात्पण्डित पुण्डरीक तरणि श्रीमान्प्रभाचन्द्रमा।

श्रवणबेलगोला में प्रभाचन्द्र के चरण-चिह्न हैं जो राजा भोज द्वारा पूजे जाते थे।²⁰

2. इनकी दूसरी उच्च कोटि की कृति भट्ट अकलंकदेव द्वारा विरचित 'लघीयस्त्रय' (78 कारिकाओं) की 'न्यायकुमुदचन्द्र' नामक विशाल विस्तृत व्याख्या विवृति है। न्यायकुमुदचन्द्र की एक प्रति में निम्न प्रशस्ति वाक्य उपलब्ध होते हैं - “श्री जयसिंहदेव राज्ये श्रीमद्धारानिवासना परापरपरमेष्ठि प्रणामोपार्जितामल पुण्य निराकृत निखिलमकलङ्केन श्रीमत्प्रभाचन्द्रपण्डितेन न्यायकुमुदचन्द्रो लघीयस्त्रयालंकारः कृतःइति मंगलम्”।

यह जयसिंहदेव राजा भोजदेव के उत्तराधिकारी धारा-नरेश थे। यद्यपि राजा भोज का उत्तराधिकारी उनके पुत्र वत्सराज को होना चाहिए था। पर किसी कारण विशेष से इतिहास में और कहीं भी वत्सराज का धारा-नरेश के रूप में उल्लेख नहीं मिलता, धारानरेश भोजराज के उत्तराधिकारी जयसिंह और उदयादित्य हुए। माध्यान्तर तथा पन्ढेरा के दान-पत्र में सं. 1112 और 1116 में धारा के नरेश और भोज के उत्तराधिकारी होने का स्पष्ट उल्लेख है पर जैन साहित्य में जयसिंह और उदयादित्य का कहीं भी कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है।

3. प्रभाचन्द्र का तीसरा विशाल ग्रन्थ 'तत्त्वार्थवृत्ति पद-विवरण' है। यह महाग्रन्थ श्री पूज्यपाद विरचित 'सर्वार्थसिद्धि' की विस्तृत व्याख्या है।

4. 'शाकटायन व्याकरण' के कर्ता श्री पाल्यकीर्ति यापनीय संघ के आचार्य थे। शाकटायन व्याकरण का असली नाम 'शब्दानुशासन' है। कुछ दिनों के बाद यह शाकटायन व्याकरण नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी पर प्रभाचन्द्र ने 'शब्दानुशासन न्यास' नाम से विस्तृत व्याख्या की है जो मूल स्वतंत्र ग्रन्थ-जैसा माना जाता है।

5. आचार्य कुन्दकुन्द-रचित 'प्रवचनसार' की व्याख्या और विस्तृत टीका 'प्रवचन सरोज भास्कर' नाम से विशेष मूल ग्रन्थ के रूप में व्याख्यायित किया है।

6. श्री पूज्यपादस्वामी-कृत 'जैनेन्द्र व्याकरण' पर प्रभाचन्द्र-कृत 'शब्दाम्भोज भास्कर' (जैनेन्द्र महान्यास) ग्रन्थ व्याकरण जगत की सर्वश्रेष्ठ व्याख्या है।²¹

7. 'गद्य कथाकोश' में 89 कथाएँ हैं जो संस्कृत गद्य में लिखी गई हैं। लगता है इन कथाओं के बाद पुष्पिका है जो लिपिकार ने भूलवश लिख दिया हो क्योंकि इन 89 कथाओं के आगे भी और कुछ लिखा है।

8. अपभ्रंश के कवि-सम्राट श्री पुष्पदंत द्वारा रचित 'महापुराण' ग्रन्थ पर प्रभाचन्द्राचार्य द्वारा 'महापुराण टिप्पण' ग्रन्थ रचा गया है। श्री पुष्पदन्त ने महापुराण की रचना सिद्धार्थ संवत् 881 में शुरू किया था और सिद्धार्थ सं. 887 (965 ए.डी.) में समाप्त किया था। यह 3300 श्लोक प्रमाण है। (जिसमें आदिपुराण के 1950 और उत्तरपुराण के 1350 श्लोक हैं) ग्रन्थ धाराधिपति जयसिंह के समय लिखा गया था। यह टिप्पण के आदि मंगल में लिखा है -

“प्रणम्य वीरं विवुधेन्द्र संस्तुतं प्रकट निरस्त दोषं वृषभं महोदयम्। पदार्थ-संदिग्ध जनप्रबोधकं महापुराणस्य करोमि टिप्पणम्।”

अंतमंगल में लिखा है -

“समस्तसन्देहहरं मनोहरं प्रकृष्टपुण्यप्रभवजिनेश्वरम्। कृतं पुराणं प्रथमे सुटिप्पणम्, मुखावबोधं निखिलार्थ दर्पणम्॥

इति प्रभाचन्द्र विरचितमादिपुराणे पंचासश्लोकहीनं सहस्रद्वयपरिमाणं परिसमाप्ता।”

उत्तरपुराण की अन्तिम पुष्पिका निम्न प्रकार है -

श्री जयसिंह-राज्ये श्रीमद्द्वारा-निवासना परापरपरमेष्ठि प्रणामोपमाजितमलं पुण्य निराकृताखिलकलंकेन प्रभाचन्द्रं महापुराण टिप्पणस्य शतत्रयाधिक सहस्रत्रयं (3300) परिमाणं ।²²

9. इन्हीं प्रभाचन्द्राचार्य की 'क्रियाकलाप टीका' व्याख्या ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, बम्बई के शास्त्र भण्डार में विद्यमान है। इसकी अन्तिम प्रशस्ति निम्न प्रकार है -

'बन्दे मोहतमे विनाशन पटुस्त्रैलोक्यदीपप्रभुः, सं सद्गतिं समन्वितस्य निखलं स्नेहस्यं संशोधकः शोधका सिद्धान्ताहि समस्त शास्त्रकिरणः श्री पदमन्दी प्रभुः, तच्छिष्यात् प्रकटार्थतां स्तुति पदं प्राप्तं प्रभाचन्द्रतः ।'²³

श्री माणिक्यनन्दि (परीक्षामुख) के रचयिता प्रभाचन्द्राचार्य के विद्यागुरु तथा पद्मन्दी सैद्धान्तिक दीक्षागुरु थे।

इन कृतियों के अतिरिक्त

10. समाधितंत्र टीका
11. रत्नकरण्डश्रावकाचार टीका
12. आत्मानुशासन तिलक टीका
13. स्वयंभूस्तोत्र टीका।

14. पंचास्तिकाय प्रदीप आदि कृतियाँ टोडारायसिंह (राजस्थान) के नेमिनाथ मंदिर में सं. 1605 की लिखी विद्यमान हैं पर यह प्रामाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता कि ये इन्हीं प्रभाचन्द्र की हैं अथवा किसी अन्य प्रभाचन्द्र की। शोधकर्ताओं के समक्ष एक प्रमुख कार्य है कि वे शोध करके इसका निर्णय करें।

उपर्युक्त ग्रन्थों के कर्ता प्रभाचन्द्राचार्य को प्रकृति के प्रति बड़ा अनुराग है। उन्होंने सूर्य, चन्द्र, कमल कमलिनी-वाचक पर्यायवाची शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है। कमल-मार्तण्ड, कुमुदचन्द्र, अम्भोज भास्कर, सरोज भास्कर आदि शब्द प्रकृति-प्रेम को दर्शानेवाले हैं। आचार्य प्रभाचन्द्र की प्रशस्तियाँ हम यहाँ विस्तार से नहीं दे पा रहे हैं अतः जिज्ञासु पाठक श्री जुगलकिशोरजी मुख्तार द्वारा संपादित 'जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह' के निम्न पृष्ठों पर देखें, जैसे -

1. शब्दाम्भोज भास्कर की प्रशस्ति, पृ. 143
2. तत्त्वार्थवृत्ति पद प्रशस्ति, पृ. 160
3. पंचास्तिकाय प्रदीप प्रशस्ति, पृ. 201

4. आत्मानुशासन तिलक प्रशस्ति, पृ. 201

5. आराधना कथा प्रबन्ध प्रशस्ति, पृ. 202

6. प्रवचन सरोज भास्कर प्रशस्ति, पृ. 203

इन प्रभाचन्द्र को अनेक जगह 'पण्डितप्रवर' शब्द से अंकित किया है और कहीं 'आचार्य प्रभाचन्द्र' शब्द से अलंकृत हैं। हम उन विद्वानों के आभारी हैं जिनके ग्रन्थों की सामग्री इस लेख में दी गई है।

1. जैन शिलालेख संग्रह, भाग प्रथम, पृ. 79
2. जैन शिलालेख संग्रह, भाग प्रथम, पृ. 118, भूमिका, पृ. 112, 133, 142
3. जैन शिलालेख संग्रह, भाग प्रथम, पृ. 231
4. जैन शिलालेख संग्रह, भाग प्रथम, पृ. 253
5. जैन शिलालेख संग्रह, भाग प्रथम, पृ. 267
6. जैन शिलालेख संग्रह, भाग प्रथम, पृ. 170
7. जैन शिलालेख संग्रह, भाग प्रथम, पृ. 427
8. भट्टारक सम्प्रदाय, सम्पा. - श्री विद्याधर जोहरापुरकर, पृ. 104-105
9. भट्टारक सम्प्रदाय, जोहरापुरकर, पृ. 8
10. भट्टारक सम्प्रदाय, जोहरापुरकर, पृ. 185
11. भट्टारक सम्प्रदाय, जोहरापुरकर, पृ.185
12. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, श्री जुगलकिशोरजी मुख्तार, भूमिका, पृ. 21
13. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, श्री जुगलकिशोरजी मुख्तार, 26 भूमिका, पृ. 23
14. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, श्री जुगलकिशोरजी मुख्तार, पृ. 66, भूमिका, पृ. 32
15. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, श्री जुगलकिशोरजी मुख्तार, पृ. 201
16. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, श्री जुगलकिशोरजी मुख्तार, पृ. 223 भूमिका, पृ. 112
17. जैनज्म इन इण्डिया, पृ. 417
18. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, श्री जुगलकिशोरजी मुख्तार, पृ. 214
19. माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, 28वाँ पुष्प, पाँचवाँ अध्याय, पृ. 17
20. Political histry I No. v. Than India by Sh. Sorac Chandra, पृ. 107
21. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, श्री जुगलकिशोरजी मुख्तार, पृ. 143
22. जैनधर्म का प्राचीन इतिहास, भाग द्वितीय, पण्डित परमानन्द, पृ. 286
23. जैनधर्म का प्राचीन इतिहास, भाग द्वितीय, पण्डित परमानन्द, पृ. 286

68, श्रुति कुटीर, युधिष्ठिर गली,
विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-32

प्रमाण

* स्वपूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम् ।1.1।

- परीक्षामुख

- स्व अर्थात् अपने आपके और अपूर्वार्थ अर्थात् जिसे किसी अन्य प्रमाण से जाना नहीं है, ऐसे पदार्थ के निश्चय करनेवाले ज्ञान को 'प्रमाण' कहते हैं। - प्रमेयरत्नमाला

* हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत् । 1.2। - परीक्षामुख

- यतः (क्योंकि) प्रमाण हित की प्राप्ति और अहित का परिहार करने में समर्थ है अतः वह ज्ञान ही हो सकता है। (जो ज्ञानरूप नहीं है वह हित की प्राप्ति व अहित के परिहार में समर्थ नहीं है।) - प्रमेयरत्नमाला

नय

* अनिराकृतप्रतिपक्षो वस्त्वंशग्राही ज्ञातुरभिप्रायो नयः।6.74।

- प्रमेयकमलमार्तण्ड

- जिसने प्रतिपक्ष का निराकरण नहीं किया है और जो वस्तु के एक अंश (धर्म) को ग्रहण करता है, ज्ञाता के ऐसे अभिप्राय को 'नय' कहते हैं। वस्तु अनन्तधर्मात्मक है। ज्ञाता वस्तु के उन अनन्त धर्मों में से 'नय' के द्वारा मुख्यरूप से एक धर्म का विचार करता है, किन्तु शेष धर्मों का निराकरण न करके उनका भी अस्तित्व स्वीकार करता है, यही 'नय' है। वस्तु अनन्तधर्मात्मक है, इसलिए नय भी अनन्त है।

प्रमाण और नय में अन्तर

ज्ञानविशेषो नय इति ज्ञानविशेषः प्रमाणमिति नियमात्।

उभयोरन्तर्भेदो विषयविशेषान्न वस्तुतो भेदः ।1.679।

स यथा विषयविशेषो द्रव्यैकांशो नयस्य योऽन्यतमः।

सोऽप्यपरस्तदपर इह निखिलं विषयः प्रमाणजातस्य।1.680।

- पंचाध्यायी, पं. राजमल्ल

- नियम से नय भी ज्ञान विशेष है और प्रमाण भी ज्ञान विशेष है। दोनों में विषय विशेष की अपेक्षा से ही आन्तरिक भेद है, ज्ञान की अपेक्षा कोई भेद नहीं है।

नय का विषय द्रव्य का कोई एक अंश विशेष है और प्रमाण का विषय उस अंश विशेष के साथ उसके अतिरिक्त/भिन्न शेष सब अंश हैं।

अर्थात् प्रमाण सामान्य-विशेषात्मक पूरी वस्तु को एकसाथ जानता है और नय उसके किसी एक अंश को मुख्य (शेष को गौण) करके जानता है।

आचार्य प्रभाचन्द्र द्वारा प्रतिपादित प्रमाण : स्वरूप एवं विश्लेषण

- डॉ. एच. सी. जैन



भारतीय दर्शन की परम्परा में प्रमाण और प्रमेय इन दोनों के अस्तित्व को सदैव स्वीकार किया गया है। प्रमेय की सिद्धि में प्रमाण की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, जिसे सिद्ध करने के लिए प्रायः स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, आगम और अनुमान को आधार बनाया जाता है। उसी के आधार पर वस्तु के स्वरूप को सिद्ध किया जाता है। प्रमेय की वास्तविकता और अवास्तविकता के लिए भी प्रमाण एक आधारभूत विषय होता है। जिसकी चर्चा प्रत्येक दार्शनिक ने की है।

न्याय-व्यवस्था - प्रमाण को सिद्ध करने के लिए जो आधार बनाया जाता है उसमें परीक्षण की प्रधानता होती है। प्रमाण के द्वारा अर्थ का परीक्षण न्याय कहलाता है।¹ जैन न्यायशास्त्र को विधि और निषेध दोनों दृष्टियों से प्रतिपादित किया गया है, जिसे सापेक्ष कहते हैं।²

न्याय-युग का विभाजन - जैन दर्शन-परम्परा में आगम, सिद्धान्त और न्यायशास्त्र का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसी के आधार पर निम्न विभाजन किया जाता है -

1. **आगम युग** - अंग, उपांग आदि आगम में ज्ञान और दर्शन की विशुद्ध चर्चा है, उसमें साकार और अनाकार दृष्टियाँ हैं। विधि और निषेध भी है, उसमें ज्ञान के विषय को दो दृष्टियों से प्रस्तुत किया गया है जिसे प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कहते हैं।³ वस्तु तत्त्व के प्रतिपादन में प्रमाण और नय इन दो विशेषताओं की प्रमुखता है।

2. **दर्शन युग** - आगम के पश्चात् दार्शनिक परम्परा का भी प्रारंभ हुआ, उस परम्परा में सूत्रकृतांग में प्रतिपादित स्व-समय और पर-समय के साथ-साथ क्रियावादी, अक्रियावादी, आत्मवादी, लोकवादी, न्यायवादी, नियतिवादी, स्वभाववादी, क्षणिकवादी आदि जो दृष्टियाँ हैं वे सभी दार्शनिकों के विचारों में किसी न किसी रूप में अवश्य प्राप्त होती हैं। जैन दार्शनिक-परम्परा में आगम के पश्चात् तत्त्वार्थसूत्र में प्रतिपादित प्रमाण और नय का विषय दार्शनिक दृष्टि को लिये हुए है, जिसे आधार बनाकर पूज्यपाद अकलंक, विद्यानंद आदि ने विस्तृत व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं। इसके अनन्तर सिद्धसेन ने प्रमाण और नय के विषय को अनेकान्त दृष्टि से प्रतिपादित किया। यह क्रम आगे भी चलता रहा।

3. **प्रमाण युग** - आचार्य सिद्धसेन ने तीसरी-चौथी शताब्दी में प्रमाण-व्यवस्था पर गंभीर चिन्तन प्रस्तुत किया। आचार्य अकलंक, आचार्य हरिभद्र, माणिक्यनन्दि, वादिदेव सूरि, हेमचन्द्र आदि ने प्रमाण की परिभाषाएँ देकर सम्पूर्ण प्रमाण के विषय को व्यापकरूप में प्रस्तुत किया।

बौद्ध, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक आदि ने भी प्रमाण की शास्त्रीय परिभाषाएँ दीं।

बौद्ध - आचार्य धर्मकीर्ति ने प्रमाण को अभिसंवादी ज्ञान कहा।⁴

नैयायिक - न्यायवार्तिककार ने अर्थोपलब्धि को प्रमाण माना।⁵

इसी तरह सांख्य-योग-मीमांसक आदि ने प्रमाण सम्बन्धी परिभाषाएँ दीं जिन्होंने अर्थ-ज्ञान को प्रमाण माना या साधकतम कारण को प्रमाण कहा।⁶

आचार्य प्रभाचन्द्र द्वारा प्रतिपादित प्रमाण : स्वरूप और विश्लेषण

आचार्य प्रभाचन्द्र का समय 10वीं शताब्दी निर्धारित किया गया है।⁷ इन्होंने परीक्षामुख के 212 सूत्रों पर प्रमेयकमलमार्तण्ड नामक टीका लिखी है। इसके अतिरिक्त उनकी निम्न रचनाएँ भी हैं - न्यायकुमुदचन्द्र, तत्त्वार्थवृत्तिपद-विवरण, शाकटायन-न्यास, शब्दाम्भोजभास्कर, प्रवचनसरोजभास्कर, गद्य कथाकोश।

प्रमाण का लक्षण

स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम् ।⁸

प्रभाचन्द्र ने स्व-अपूर्व के अर्थ के व्यवसायात्मक ज्ञान को प्रमाण माना है। अर्थात् जो अपने और अपूर्व अर्थ के निश्चयात्मक विषय को महत्व देता है उसे प्रमाण कहते हैं। प्रमाण के इस लक्षण में वस्तु की प्रामाणिकता है किसी अन्य से विशेष अर्थ का ज्ञान है। अर्थात् निराकरण करके समझाने की प्रवृत्ति है, अर्थ से वस्तु का प्रयोजन है। व्यवसायात्मक से विशद् ज्ञान का बोध होता है और ज्ञान से वस्तु की विशदता का परिचय भी प्राप्त होता है।

माणिक्यनंदि ने निम्न परिभाषा दी है -

स्वपूर्वार्थ व्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम् ।⁹

इसी सूत्र को प्रभाचन्द्र ने अपने प्रमाण के विषय का आधार बनाया। प्रमाणनयतत्वालोक में निम्न परिभाषा दी गयी है -

स्वपरव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणम् ।¹⁰

अर्थात् स्व और पर के व्यवसायी ज्ञान का नाम प्रमाण है। इस परिभाषा में अपूर्व शब्द का प्रयोग नहीं है। उसके स्थान 'पर' शब्द का प्रयोग है। जिससे इसका अर्थ 'स्व' अर्थात् अपने और 'पर' अर्थात् अन्य वस्तु के निश्चयात्मक ज्ञान को प्रतिपादित किया गया, क्योंकि वस्तु का ज्ञान दो प्रकार से होता है - स्वतः और परतः, मुख्य और गौण, नित्य-अनित्य, सत्-असत्, सामान्य-विशेष, भेद-अभेद आदि।

स्वार्थ व्यवसायत्मकं ज्ञानं प्रमाणम् ।¹¹

इस सूत्र में 'स्व' और 'अर्थ' के व्यवसायात्मक ज्ञान को प्रमाण कहा गया है। प्रमाणमीमांसाकार ने उक्त परिभाषाओं की अपेक्षा निम्न परिभाषा दी है -

सम्यगर्थनिर्णयः प्रमाणम् ।¹²

'सम्यक् अर्थ' का निर्णय जिससे होता है वह प्रमाण कहलाता है।

उक्त सैद्धान्तिक परिभाषाएँ सभी दृष्टियों से 'अर्थ' के निर्णय को प्रस्तुत करनेवाली हैं। आचार्य प्रभाचन्द्र की परिभाषा में प्रमाण के विषय साथ-साथ 'स्व, अपूर्व, अर्थ, व्यवसायात्मक और ज्ञान' इन पाँचों का विस्तृत विवेचन करते हुए निश्चित प्रयोजन को सिद्ध किया है। 'स्व' और 'अर्थ' से वस्तु का प्रयोजन और उसकी सार्थकता पर प्रकाश डाला गया है। 'अर्थ' से निश्चित भाव और 'व्यवसायात्मक' विशेषण से बौद्ध

विचारकों द्वारा प्रतिपादित प्रमाण को खंडित किया गया है, क्योंकि बौद्धों ने अभिसंवादी ज्ञान को प्रमाण कहा है जो मात्र ज्ञान तक ही सीमित है। इसमें संशय और विपर्यय ज्ञान भी होता है इसलिए आचार्य प्रभाचन्द्र ने ज्ञान के द्वारा 'निश्चयात्मक ज्ञान' को महत्त्व दिया, वही ज्ञान निर्णयात्मक होता है, बाधाओं से रहित होता है।

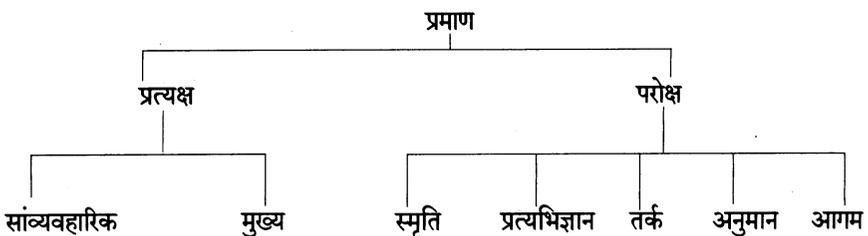
मीमांसक 'ज्ञान' को विशेष महत्त्व देते हैं। उनका कहना है कि ज्ञान 'अर्थ' को जानता है, स्वयं को नहीं जानता, वह अनुमेय है। सांख्य 'ज्ञान' को अचेतन मानता है। आचार्य प्रभाचन्द्र के 'ज्ञान' का अभिप्रायः इनसे भिन्न है। उनके अनुसार 'ज्ञान' स्वयं प्रकाशी है एवं दूसरों को भी प्रकाशित करता है। इसलिए उनकी परिभाषा में 'व्यवसायात्मक ज्ञानं प्रमाणम्' पद तीनों ही काल के विषय को प्रतिपादित करनेवाला है।

प्रमाण-भेद - प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण के ये दो भेद कहे गये हैं। जिसमें 'विशदं प्रत्यक्षम्' अर्थात् जो विशुद्ध ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष प्रमाण है। अर्थात् जो ज्ञान स्पष्ट होता है वह प्रत्यक्ष होता है। स्पष्टता में इन्द्रियों का प्रयोजन नहीं होता अपितु आत्मा ही मूल कारण बनती है। इसलिए प्रति+अक्षम् = प्रत्यक्षम्, अक्ष के दो अर्थ होते हैं - एक अर्थ होता है इन्द्रिय और दूसरा अर्थ है आत्मा।¹³ इन्द्रियों के कारण जो ज्ञान होता है वह अविशद होता है। अविशद को 'परोक्ष प्रमाण' कहा गया है।¹⁴ प्रत्यक्ष और परोक्ष के विवेचन को निम्न प्रमाणों से सिद्ध किया है -

प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदम्।¹⁵

स्मृति, प्रत्याभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम - ये पाँच परोक्ष प्रमाण हैं। आचार्य प्रभाचन्द्र ने द्वितीय परिच्छेद में प्रत्यक्ष को विशद कहकर उसे 'इन्द्रिय' और 'अनिन्द्रिय' की अपेक्षा विभक्त किया है।¹⁶

प्रवृत्ति और निवृत्ति, इन्द्रिय और अनिन्द्रिय आदि का विषय सांख्यवहारिक प्रत्यक्ष कहलाता है, जो एकदेश प्रत्यक्ष माना गया है। प्रभाचन्द्र ने विशद और ज्ञान इन दोनों का बोध कराया है।



स्मृति - इसमें अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा - ये चार ज्ञान के विषय होते हैं। इसमें कार्य-कारण भाव विद्यमान रहता है, स्मृति अविस्वादि ज्ञान है। स्मृति का आकार तत् है। इसमें धारणरूप संस्कार होता है। किसी निमित्त के द्वारा संस्कार जागृत होता है तब स्मृति होती है, इसलिए स्मृति प्रमाण है। स्मृति में अनुभूत का विषय होता है।¹⁷ इसे समझाने के लिए यथा 'स देवदत्त इति' - जैसे उदाहरण हैं।

बौद्ध पूर्वानुभव को स्मृति मानता है। मीमांसक गृहीतार्थ को विषय बनाता है और नैयायिक उसे अर्थजन्य नहीं मानता। प्रभाचन्द्र ने तत् और धारणा के कारण को विषय बनाया।

प्रत्यभिज्ञान - स्मृति का हेतु धारणा है इसलिए प्रत्यभिज्ञान को संकलनात्मक ज्ञान कहा गया है। सादृश्य होने के कारण 'सादृश्य प्रत्यभिज्ञान' कहलाता है और दोनों समय में एक ही रहनेवाला ज्ञान 'एकत्व प्रत्यभिज्ञान' कहलाता है।¹⁸ इसके भी दो हेतु हैं - प्रत्यक्ष और स्मरण। प्रत्यक्ष में वस्तु का जैसा विशद रूप से प्रतिभास होता है वह स्मृति में नहीं होता है। वर्तमान पर्याय का दर्शन और पूर्व पर्याय का स्मरण इसकी प्रमुख विशेषता है।¹⁹ नैयायिक प्रत्यभिज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान मानते हैं और बौद्ध प्रत्यभिज्ञान को नहीं मानते। उनका कहना है कि 'सःअयम्'²⁰ ऐसा ज्ञान प्रत्यक्ष है। दो ज्ञानों का समुच्चय है। एक स्वतंत्र ज्ञान नहीं।²¹

तर्क -

उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानसमूहः।²²

उपलंभ और अनुपलंभ के कारण जो व्याप्ति-ज्ञान होता है उसे तर्क कहते हैं। प्रभाचन्द्र ने तर्क को ऊह कहा है। न्यायावतार, न्यायविनिमय, प्रमाण-मीमांसा आदि में साध्य और साधन को महत्त्व दिया गया है। जिसे तथोत्पत्ति भी कहा है।²³ बौद्ध तर्क को प्रमाण नहीं मानता वह प्रत्यक्ष और अनुमान को महत्त्व देता है।

अनुमान -

साधनात् साध्यविज्ञानमनुमानम्।²⁴

साधन से साध्य विज्ञान को अनुमान कहा गया है। जैसे पर्वत में धूम देखकर अग्नि का ज्ञान। न्यायशास्त्र-परम्परा में अविनाभाव सम्बन्ध स्वीकार किया है। जिसमें साध्य के बिना साधन नहीं होता है। ऐसा कथन किया गया है। अनुमान प्रत्यक्षपूर्वक होता है। उसके तीन भेद हैं - (1) पूर्ववत्, (2) शेषवत् और (3) सामान्यतोदृष्ट।

आगम - आप्त-वचन को आगम कहते हैं। जिसके आधार पर वस्तु-तत्त्व का बोध किया जाता है। आप्त द्वारा कथित वचन से पदार्थों का जो ज्ञान होता है उसमें किसी तरह का विरोध नहीं होता। ज्ञान आगम है जो पूर्ण कहलाता है। सर्वज्ञ के वचन प्रमाणिक होते हैं। इसी दृष्टि को लेकर प्रभाचन्द्र ने मात्र 'ज्ञान' को प्रमाण नहीं कहा अपितु 'सर्वज्ञ के ज्ञान' को प्रमाण कहा है।²⁵ आगम द्वारा बौद्ध विचार, वेदविचार, स्मृति, पुराण, मीमांसा कथन आदि के प्रमाणों को रखकर आप्तवचन को प्रमाण मानकर उसकी विस्तार से शुद्धि की है। उसमें भी पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष दोनों ही तरह की दृष्टियाँ हैं।

प्रमेयकमलमार्तण्ड में प्रमाण का विषय मुख्य है। इसमें प्रमेयों को जाननेवाले अन्य दार्शनिकों के विचारों का विवेचन भी है। उनके पक्ष को सामने रखकर विषय का वर्णन किया गया है।

-
1. न्यायभाष्य, 1.1.1
 2. स्वयंभू स्तोत्र, श्लोक सं. 102
 3. अनुयोगद्वार, गाथा 2
 4. प्रमाणवार्तिक, श्लोक 3
 5. न्यायवार्तिक, 3-4
 6. जैन न्याय का विकास, पृ. 82
 7. जैन महेन्द्रकुमार, प्रमेयकमलमार्तण्ड की प्रस्तावना, पृ. 5
 8. प्रमेयकमलमार्तण्ड, 1.1
 9. परीक्षामुख, 1.1
 10. प्रमाणनयतत्त्वालोक 1.2
 11. तत्त्वार्थश्लोक वार्तिक, 1.10.17
 12. प्रमाणमीमांसा, सूत्र 2
 13. स्वार्थसिद्धि, 1,6-7
 14. प्रमेयकमलमार्तण्ड, 3.1
 15. वही, 3.2
 16. वही, 2.5
 17. वही, 3.2.4

18. प्रमेयकमलमार्तण्ड 3.5 से 7 तक
19. जैन न्याय का विकास, पृ. 79
20. प्रमेयकमलमार्तण्ड परिशीलन, पृ. 103
21. जैन न्याय का विकास, पृ. 78
22. प्रमेयकमलमार्तण्ड 3.11
23. वही, 3.13
24. वही, 3.14
25. प्रमेयकमलमार्तण्ड, पृ. 419 से 441

सह-आचार्य
जैनोलोजी एवं प्राकृत विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर



प्रमाण के भेद

* तद्द्वेधा 12.1।

- परीक्षामुख

- वह प्रमाण दो प्रकार का है।

* प्रत्यक्षेतरभेदात् 12.2।

- 'प्रत्यक्ष' और इतर अर्थात् 'परोक्ष' के भेद से प्रमाण दो प्रकार का है।

* विशदं प्रत्यक्षम् 12.3।

- विशद अर्थात् निर्मल-स्पष्ट ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं।

* प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैशद्यम् 12.4।

- दूसरे ज्ञान के व्यवधान से रहित और विशेषता से होनेवाले प्रतिभास को वैशद्य कहते हैं। अर्थात् अन्य ज्ञान के व्यवधान से रहित जो निर्मल, स्पष्ट और विशिष्ट ज्ञान होता है उसे विशद या वैशद्य कहते हैं।

* परोक्षमितरत् 13.1।

- जो प्रत्यक्ष से इतर अर्थात् भिन्न है वह परोक्ष (प्रमाण) है।

* अविशदप्रतिभासं परोक्षम् 13.1।

- न्यायदीपिका, श्री धर्मभूषण यति

- अविशद, अस्पष्ट, अनिर्मल ज्ञान को परोक्ष (प्रमाण) कहते हैं।

नय के भेद

* तावन्मूलनयौ द्वौ निश्चयो व्यवहारश्च।

- आलापपद्धति

- मुख्यतया नय के दो प्रकार से भेद बताये गये हैं -

1. निश्चयनय और 2. व्यवहारनय।

वस्तुतः वस्तु अनन्तधर्मात्मक है अतः नय भी अनन्त हैं।

आचार्य प्रभाचन्द्र के ग्रन्थों में 'तर्क प्रमाण' की अवधारणा

- डॉ. (सुश्री) राजकुमारी जैन



आचार्य प्रभाचन्द्र के ग्रन्थों में 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' और 'न्यायकुमुदचन्द्र' में 'तर्क प्रमाण' का बहुत विशद विवेचन किया गया है। दो वस्तुओं के मध्य विद्यमान सार्वभौमिक और त्रैकालिक सम्बन्धों को 'व्याप्ति सम्बन्ध' कहा जाता है तथा व्यक्ति को इस सम्बन्ध का ज्ञान 'तर्क प्रमाण' द्वारा होता है। अनुमान मानव के ज्ञानार्जन का एक महत्वपूर्ण साधन है तथा इसकी उत्पत्ति व्याप्ति सम्बन्ध के ज्ञानपूर्वक होती है। जिस व्यक्ति ने पूर्व में हेतु और साध्य के मध्य व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त किया है वही व्यक्ति हेतु का प्रत्यक्ष होने पर व्याप्ति सम्बन्ध के स्मरणपूर्वक साध्य का अनुमान कर सकता है। जैसे - जब कोई व्यक्ति किसी स्थान पर धुआँ उठती हुई देखता है तो उसे यह स्मृति होती है कि धुआँ वहीं होता है जहाँ आग भी होती है, आग का अभाव होने पर धुआँ का होना असम्भव है। इसके उपरान्त उसे उस स्थान पर आग का अनुमान ज्ञान होता है। इस अनुमान में धुआँ हेतु (साधन या लिंग) है, क्योंकि इसके द्वारा यहाँ आग को सिद्ध किया जा रहा है तथा आग साध्य है। धुआँ का आग के साथ अविनाभाव सम्बन्ध अर्थात् आग के नहीं होने पर धुआँ का सद्भाव नहीं ही होना धुआँ का आग के साथ व्याप्ति सम्बन्ध है। धुआँ यहाँ व्याप्य है, क्योंकि यह आग के सद्भाव में ही उपलब्ध होती है, उसके अभाव में कभी उपलब्ध नहीं होती तथा आग व्यापक है

क्योंकि यह धुआँ के सद्भाव के साथ ही साथ उसके अभाव में भी उपलब्ध होती है। इसप्रकार व्याप्ति सम्बन्ध दो वस्तुओं में सार्वभौमिक और त्रैकालिक रूप से विद्यमान व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है। जो व्यक्ति इस सम्बन्ध को जानता है वही व्याप्य का प्रत्यक्ष होने पर उसे हेतु बनाता है तथा व्यापक को साध्य बनाकर उसका अनुमान ज्ञान प्राप्त करता है। जैन आचार्यों के अनुसार इस व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान तर्क प्रमाण से होता है।²

व्याप्ति सम्बन्ध के ज्ञान का साधन-तर्क प्रमाण

तर्क प्रमाण व्याप्ति सम्बन्ध को जानने की सक्रिय, विचारात्मक और अन्वेषणात्मक प्रक्रिया है। आचार्य प्रभाचन्द्र इस प्रक्रिया को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि साधन के होने पर साध्य के भी विद्यमान होने (अन्वय) और साधन का अभाव होने पर साध्य के भी नहीं होने (व्यतिरेक) के अनेक दृष्टान्तों के प्रत्यक्षपूर्वक घटित होनेवाली विचारात्मक प्रक्रिया तर्क प्रमाण कहलाती है।³ व्यक्ति साधन और साध्य के अनेक अन्वयव्यतिरेकी दृष्टान्तों के प्रत्यक्ष, पूर्वदृष्ट दृष्टान्तों के स्मरण तथा वर्तमान प्रत्यक्ष तथा पूर्वदृष्ट दृष्टान्तों में विद्यमान सादृश्य और विलक्षणता के प्रत्यभिज्ञानपूर्वक साधन और साध्य में विद्यमान व्याप्ति सम्बन्ध को जानता है।⁴ उदाहरण के लिए - जब कोई व्यक्ति किसी स्थान पर धुआँ उठती हुई देखता है तो उसे यह जिज्ञासा होती है कि इस धुआँ का कारण क्या है? इस जिज्ञासा की शान्ति हेतु ध्यान से देखने पर उसे वहाँ कोई वस्तु जलती हुई दृष्टिगोचर होती है। कुछ देर बाद वह देखता है कि अब उस वस्तु का जलना बन्द हो गया तो अब वहाँ धुआँ भी नहीं उठ रही। भविष्य में उसे पुनः-पुनः धुआँ का सद्भाव होने पर आग के भी होने और आग के नहीं होने पर धुआँ के भी नहीं होने के अनेक दृष्टान्तों का प्रत्यक्ष होता है। साथ ही वह यह भी देखता है कि धुआँ तो सदैव आग के साथ ही प्राप्त हुई है लेकिन आग धुआँ के सद्भाव के साथ ही साथ उसके अभाव में भी प्राप्त हो जाती है। अपने इन विभिन्न अनुभवों में विद्यमान समानता और विलक्षणता पर विचार करते हुए व्यक्ति धुआँ और आग के मध्य व्याप्ति सम्बन्ध का निश्चय करता है। उसका यह निश्चय तर्क प्रमाण कहलाता है।

दो वस्तुओं के अनेक अन्वयव्यतिरेकी दृष्टान्तों का प्रत्यक्ष व्याप्ति सम्बन्ध के निश्चय की प्रक्रिया का प्रथम चरण है तथा इस प्रत्यक्ष का विकास अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के क्रम से होता है। प्रायः एक सामान्य व्यक्ति का प्रत्यक्ष अवग्रह तक ही

सीमित रहता है। वह दो पदार्थों - 'अ' और 'ब' के अनेक अन्वयव्यतिरेकी दृष्टान्तों का प्रत्यक्ष करके तथा यह विचार करके कि अभी तक 'ब' के नहीं होने पर 'अ' के विद्यमान होने का एक भी दृष्टान्त उपलब्ध नहीं हुआ है, 'अ' का 'ब' के साथ सार्वभौमिक और त्रैकालिक व्याप्ति सम्बन्ध स्थापित कर देता है। उसका यह निश्चय व्याप्ति सम्बन्ध का मिथ्या ज्ञान है क्योंकि वह 'अ' का 'ब' से अविनाभाव सम्बन्ध अर्थात् 'ब' का अभाव होने पर 'अ' का सद्भाव असम्भव है, को नहीं जानता।⁵ व्यक्ति को इस अविनाभाव सम्बन्ध का ज्ञान तभी हो सकता है जबकि वह परीक्षक हो; उसे यह जिज्ञासा हो कि 'अ' सदैव 'ब' के साथ ही क्यों उपलब्ध हो रहा है, यह सहोपलब्धि एक आकस्मिक घटना है या ऐसा कारण-कार्य सम्बन्ध आदि किसी नियम के अनुसार हो रहा है? जब व्यक्ति अपने इन प्रश्नों के समाधान हेतु अन्वेषणात्मक विधि का अवलम्बन लेता है तथा इसके द्वारा दो वस्तुओं के नियत साहचर्य को निर्धारित करनेवाले नियमों को जानता है तब ही उसे उन वस्तुओं में विद्यमान अविनाभाव सम्बन्धरूप व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान होता है और उसका यह ज्ञान यथार्थ है।⁶

अवग्रह द्वारा सामान्यरूप से ज्ञात हुए तथ्यों के विशिष्ट स्वरूप के प्रति जिज्ञासा और उस जिज्ञासा के निवारण हेतु किये जानेवाले अन्वेषणात्मक प्रयत्न को 'ईहा' कहा जाता है।⁷ विशेष घटनाओं के प्रत्यक्ष के स्तर पर ईहा एक क्षणिक घटना है लेकिन व्याप्ति सम्बन्ध के निश्चय की प्रक्रिया के क्षेत्र में, जो कि वैज्ञानिक नियमों के अनुसंधान की प्रक्रिया भी है, ईहा एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है।⁸ इस क्षेत्र में व्यक्ति सामान्यरूप से जान लिये गये तथ्यों के विशिष्ट स्वरूप के निश्चय हेतु पहले 'यह होना चाहिये' इस आकार में प्राक्कल्पना का निर्माण करता है तथा इस प्राक्कल्पना की दिशा में तथ्यों की खोज करता है। यदि इस प्रयास के परिणामस्वरूप उस प्राक्कल्पना की असत्यता सिद्ध होती है तो वह नयी प्राक्कल्पना का निर्माण कर उसकी दिशा में अनुसन्धान कार्य करता है। यह क्रम तबतक जारी रहता है जबतक कि व्यक्ति को अपनी समस्या का समाधान प्राप्त नहीं हो जाता। उदाहरण के लिए - एक दिन डॉ. फ्लेमिंग अपने उद्यान में पौधे का निरीक्षण कर रहे थे। उन्होंने एक पौधे पर फफूँदी आयी हुई देखी और कुछ फफूँदी को नष्ट होते हुए देखा। इस दृश्य से उन्हें यह जिज्ञासा हुई कि इस फफूँदी के नष्ट होने का क्या कारण है? इसके कारण को जानने के लिए वे प्रयोगशाला में जाकर अनुसंधान-कार्य में लग गये। अनुसंधान की इस प्रक्रिया में उन्होंने अनेक प्राक्कल्पनाओं का निर्माण किया, नियंत्रित परिस्थितियों में प्रयोगात्मक विधि से उनका सत्यापन किया तथा उनके असत्य सिद्ध होने पर नयी प्राक्कल्पनाओं का निर्माण किया.....। यह

प्रक्रिया तबतक चलती रही जबतक कि उन्हें कुछ विशेष जीवाणुओं का सद्भाव होने पर फफूँदी के नष्ट होने का प्रत्यक्ष नहीं हुआ। उन्होंने नियंत्रित परिस्थितियों में प्रयोगपूर्वक उन विशेष जीवाणुओं का सद्भाव होने पर फफूँदी के अनिवार्यतया नष्ट होने तथा फफूँदी के नष्ट नहीं होने पर उन जीवाणुओं का भी अभाव होने के अनेक अन्वयव्यतिरेकी दृष्टान्तों का प्रत्यक्ष किया। इन प्रत्यक्षों में विद्यमान सादृश्य और विलक्षणता पर विचार करतेहुए उन्होंने विशेष प्रकार के जीवाणुओं के सद्भाव और फफूँदी के विनाश के मध्य व्याप्ति सम्बन्ध का निश्चय किया तथा अपने इस ज्ञान के आधार पर 'पेनिसिलिन' नामक दवा का आविष्कार किया।

इसप्रकार व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान दो वस्तुओं के अनेक अन्वयव्यतिरेकी दृष्टान्तों के प्रत्यक्ष के आधार पर किया गया सामान्यीकरण मात्र नहीं है बल्कि यह विचारात्मक, अन्वेषणात्मक और परीक्षाप्रवण तर्क प्रक्रिया से अर्जित ज्ञान है।

तर्क प्रक्रिया द्वारा व्याप्ति सम्बन्ध के निश्चय हेतु सामग्री प्रत्यक्ष द्वारा ही प्राप्त नहीं होती बल्कि 'अनुमान' और 'शब्द प्रमाण' द्वारा भी प्राप्त होती है। व्यक्ति व्याप्ति सम्बन्ध के निश्चय हेतु जो अनुसंधान-कार्य करता है उसमें वह विभिन्न प्रमाणों से अर्जित जानकारियों का उपयोग करता है। 'जो व्यक्ति जिस क्षेत्र विशेष में अबतक हुए ज्ञान के विकास से जितना अधिक परिचित होता है उस क्षेत्र में वह उतने ही उत्कृष्ट व्याप्ति सम्बन्धों के अनुसंधान की क्षमता से युक्त होता है। डॉ. फ्लेमिंग विशेष प्रकार के जीवाणुओं के सद्भाव और फफूँदी के विनाश के मध्य व्याप्ति सम्बन्ध का निश्चय इसलिये कर सके कि वे जीवाणुओं के स्वरूप और उनकी शक्तियों के सम्बन्ध में अबतक हुए ज्ञान के विकास से परिचित थे। शब्द प्रमाण से अर्जित इस ज्ञान के आधार पर उन्होंने विभिन्न तथ्यों का अनुमान किया तथा इसके आधार पर प्राक्कल्पनाओं का निर्माण करके उन प्राक्कल्पनाओं की दिशा में अनुसंधान-कार्य किये तथा इसके द्वारा व्याप्ति सम्बन्ध का निश्चय किया। इस प्रकार व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान मात्र प्रत्यक्ष प्रमाण से अर्जित सामग्री द्वारा नहीं होता बल्कि यह प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द आदि सभी प्रमाणों के अवलम्बनपूर्वक घटित होनेवाली अन्वेषणात्मक प्रक्रिया से प्राप्त ज्ञान है।

व्यक्ति का किसी भी क्षेत्र में अनुमान द्वारा अर्जित ज्ञान उस क्षेत्र में कार्यरत सार्वभौमिक नियमों के ज्ञानपूर्वक ही सम्भव होता है। इन नियमों को व्यक्ति सदैव ही स्वयं के अन्वेषणात्मक प्रयत्नों द्वारा नहीं जानता बल्कि वह इनका ज्ञान अनुमान और शब्द प्रमाण द्वारा भी प्राप्त करता है। जैसे एक डॉक्टर विभिन्न जीवाणुओं के सद्भाव और

रोगों की उत्पत्ति तथा विभिन्न दवाओं के प्रयोग और रोगों की समाप्ति के मध्य विद्यमान कारण-कार्य नियमों का ज्ञान 'शब्द प्रमाण' से प्राप्त करता है। इस ज्ञान के आधार पर टेस्ट (जाँच) के द्वारा रोगी में रोग विशेष के जीवाणुओं के सद्भाव को सुनिश्चित करके उसके रोग का अनुमान करता है तथा इसके अनुसार वह उसे रोग की समाप्ति हेतु दवा देता है। व्याप्ति सम्बन्ध के ज्ञान में शब्दादि प्रमाणों की इस भूमिका को दृष्टि में रखते हुए माणिक्यनंदी कहते हैं - 'साधन के सद्भाव में साध्य की उपलब्धि और साध्य के अभाव में साधन की अनुपलब्धि के निमित्त से होनेवाले व्याप्ति सम्बन्ध के ज्ञान को ऊह (तर्क) कहा जाता है।'⁹ इसकी व्याख्या करते हुए प्रभाचन्द्र कहते हैं - 'व्यक्ति को व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान मात्र हेतु और साध्य के अन्वयव्यतिरेकी दृष्टान्तों के पुनः-पुनः दर्शन से नहीं होता बल्कि उसे यह ज्ञान उसके तर्कज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के अनुसार एकबार या अनेकबार हेतु के होने पर साध्य की उपलब्धि और साध्य का अभाव होने पर हेतु की अनुपलब्धि के ज्ञानपूर्वक होता है। इस उपलब्धि और अनुपलब्धि के निमित्त से होनेवाला व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान तर्क प्रमाण है। यह परिभाषा अव्याप्ति दोष से रहित है, क्योंकि अतीन्द्रिय साधन और साध्य में विद्यमान अन्वयव्यतिरेक का ज्ञान शब्द प्रमाण और अनुमान से भी होता है तथा तर्क प्रमाण की यह परिभाषा इन प्रमाणों से होनेवाले ज्ञान को भी अपने में समाहित करती है। उदाहरण के लिए - जब व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के सुखी जीवन को देखकर उसके द्वारा पूर्व में किये गये पुण्यार्जन का अनुमान करता है तो इस अनुमान को सम्भव बनानेवाले व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान 'शुभः पुण्यस्य' इस आस वाक्य द्वारा प्राप्त होता है। कर्म सिद्धान्त का ज्ञान व्यक्ति को स्वयं के इन्द्रिय प्रत्यक्ष से होनेवाला ज्ञान न होकर अतीन्द्रिय ज्ञान है तथा सामान्य मानव इसे शब्द प्रमाण द्वारा जानता है। इसी प्रकार जब सूर्य के स्थान-परिवर्तन को देखकर उसकी गमनशक्ति का अनुमान किया जाता है तो इस अनुमान में प्रयुक्त सूर्य की गमनशक्ति के सद्भावरूप साध्य और उसके स्थान परिवर्तन-रूप साधन में व्याप्ति सम्बन्ध होने का ज्ञान अनुमान से होता है। इस प्रकार मानव को साधन के होने पर साध्य के भी सद्भाव और साध्य का अभाव होने पर साधन का भी अभाव रूप अन्वयव्यतिरेकी दृष्टान्तों की प्राप्ति मात्र प्रत्यक्ष से ही नहीं, अनुमान और शब्द प्रमाण से भी प्राप्त होती है तथा इस सामग्री पर ऊहापोहात्मक चिन्तन द्वारा होनेवाला व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान 'तर्क प्रमाण' है।'¹⁰

न्याय दर्शन का मत

तर्क की अप्रामाणिकता तथा तर्कसहकृत प्रत्यक्ष व्याप्तिज्ञान का साधन

न्याय दर्शन के अनुसार तर्क यथार्थ ज्ञान न होकर मिथ्याज्ञान है। इसके द्वारा व्यक्ति को व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान नहीं होता; बल्कि व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान हेतु और साध्य के अन्वयव्यतिरेकी दृष्टान्तों के भूयोदर्शन या पुनः पुनः प्रत्यक्ष द्वारा ही होता है। निश्चित रूप से एक परीक्षक व्यक्ति को जब किसी घटना के पीछे कार्य कर रहे कारण-कार्य नियमों आदि को जानने की जिज्ञासा होती है तो वह अन्वेषणात्मक विधि से उन नियमों का ज्ञान प्राप्त करता है। तर्क इस अन्वेषणात्मक विधि का एक चरण मात्र है जो स्वयं अविज्ञात तत्त्व के प्रति निर्णय-स्वरूप न होकर निर्णय का साधन है।¹¹ यह सम्भावना-स्वरूप होता है तथा इसका आकार 'यह होना चाहिये' रूप होता है।¹² इस प्रकार इसमें निश्चयात्मकता का अभाव होने के कारण यह अप्रमाण है। व्याप्ति सम्बन्ध के ज्ञान की प्रक्रिया में तर्क विभिन्न सम्भावनाओं को उपस्थित करके अनुसन्धान हेतु निर्देश देता है तथा उसे निर्देश की दिशा में खोज करते हुए जब व्यक्ति अनेक अन्वयव्यतिरेकी दृष्टान्तों का प्रत्यक्ष करता है तो उन प्रत्यक्षों द्वारा उसे व्याप्ति सम्बन्ध ज्ञात होता है। तर्क ज्ञानार्जन की इस प्रक्रिया में प्रत्यक्ष का सहायक मात्र ही है लेकिन इस क्षेत्र में वह स्वयं प्रमाण नहीं है।

तर्क प्रत्यक्ष का सहायक होने के साथ ही साथ उसका अनुग्राहक भी है क्योंकि यह प्रत्यक्ष द्वारा जाने गये व्याप्ति सम्बन्ध का परीक्षण करके उसकी सत्यता को सुनिश्चित करता है। जैसे - अनेक अन्वयव्यतिरेकी दृष्टान्तों के प्रत्यक्षपूर्वक जब व्यक्ति धुआँ और आग के मध्य व्याप्ति सम्बन्ध का निश्चय करता है तो वह तर्क द्वारा उसकी परीक्षा करके उसकी सत्यता को सुनिश्चित करता है। वह यह विचार करता है कि हम यह मान लेते हैं कि धुआँ और आग के मध्य व्याप्ति सम्बन्ध नहीं है तथा धुआँ आग के बिना भी मिल सकती है। अपनी इस स्थापना का वह विभिन्न विकल्पों को सामने रखकर विचार करता है। वह धुआँ का कारण यह हो सकता है, यह हो सकता है आदि रूप से विभिन्न सम्भावनाओं को उपस्थित करके उनकी परीक्षा करता है तथा किसी भी सम्भावना के प्रमाणों से सिद्ध नहीं होने पर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यह स्थापना असत्य है कि धुआँ का कारण आग के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ है। इसलिये भूयो दर्शन के द्वारा धुआँ और आग के मध्य जो व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान हुआ है वही सत्य है। इस प्रकार तर्क प्रत्यक्ष के विषय का विवेचन करके उसका

विभिन्न प्रकार से परीक्षण करके उस विषय की सत्यता के प्रति दृढ़ निश्चय उत्पन्न करता है।¹³ व्याप्ति सम्बन्ध के निश्चय में तर्क की यह महत्वपूर्ण भूमिका होने पर भी वह स्वयं प्रमाण नहीं है। वह संशय और निर्णय की मध्यवर्ती स्थिति है, स्वयं सम्भावना-स्वरूप है, प्रमाणों से अर्थज्ञान प्राप्त करने में सहायक है तथा स्वयं निर्णय-रहित होने के कारण अप्रमाण है।¹⁴

न्याय दर्शन की व्याप्तिस्थापना-पद्धति की यह कहकर आलोचना की जाती है कि दो पदार्थों के कुछ भावात्मक-अभावात्मक दृष्टान्तों के प्रत्यक्ष के आधार पर उन पदार्थों में सार्वभौमिक और त्रैकालिक नियत साहचर्य सम्बन्ध के सद्भाव का ज्ञान किस प्रकार हो सकता है? इस आपत्ति के उत्तर में नैयायिक कहते हैं कि दो विशेष वस्तुओं का प्रत्यक्ष करते समय व्यक्ति को सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष द्वारा उन दो पदार्थों में विद्यमान सामान्यों का ज्ञान होता है तथा व्यक्ति इन सामान्यों में विद्यमान नियत साहचर्य को जानकर इन सामान्यों के विशेष दृष्टान्तों में व्याप्ति सम्बन्ध की स्थापना करता है।¹⁵ इस प्रकार व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान तर्क द्वारा न होकर तर्क सहकृत प्रत्यक्ष द्वारा होता है।

आचार्य प्रभाचन्द्र द्वारा न्याय मत का खण्डन तथा तर्क की प्रामाणिकता की सिद्धि

आचार्य प्रभाचन्द्र न्यायदर्शन के मत को अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान प्रत्यक्ष से नहीं हो सकता क्योंकि इस सम्बन्ध का ज्ञान अन्वेषणात्मक प्रक्रिया से होता है तथा इस प्रक्रिया में विभिन्न प्रमाणों से प्राप्त सामग्री के आधार पर ऊहापोहात्मक चिन्तन द्वारा व्याप्ति सम्बन्ध का निश्चय किया जाता है। इसलिये व्याप्ति सम्बन्ध के ज्ञान के लिए तर्क ही प्रमाण है।¹⁶ वस्तुतः प्रत्यक्ष का विषय सामने स्थित और वर्तमानकालीन पदार्थ होता है। किसी भी प्रत्यक्ष में दो वस्तुओं के त्रैकालिक दृष्टान्तों को जानकर उनमें व्याप्ति सम्बन्ध स्थापित करने की सामर्थ्य नहीं है। हजारों अन्वयव्यतिरेकी दृष्टान्तों के प्रत्यक्ष से भी व्यक्ति को व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान नहीं हो सकता; क्योंकि ये प्रत्यक्ष मात्र अपने-अपने विषय का ही ज्ञान हैं तथा किसी भी प्रत्यक्ष में अन्य प्रत्यक्षों के विषय को जानकर उनके मध्य तुलनापूर्वक किसी प्रकार के सार्वभौमिक सम्बन्ध को जानने की सामर्थ्य नहीं है।¹⁷ सामान्यलक्षण प्रत्यक्ष द्वारा भी व्याप्ति सम्बन्ध को नहीं जाना जा सकता क्योंकि इस प्रत्यक्ष द्वारा दो विशेष वस्तुओं में विद्यमान सामान्यों का पृथक्-पृथक् ही ज्ञान होता है लेकिन यह प्रत्यक्ष दो सामान्यों में विद्यमान व्याप्ति सम्बन्ध को नहीं जान सकता। जैसे विशेष धुआँ और आग का प्रत्यक्ष

करते समय व्यक्ति को उनमें विद्यमान धूमत्व सामान्य और अग्नित्व सामान्य का पृथक्-पृथक् ही ज्ञान होता है लेकिन उसे इस प्रत्यक्ष द्वारा यह ज्ञान नहीं होता कि धूमत्व सामान्य अग्नित्व सामान्य का अविनाभावी है। अर्थात् अग्नित्व सामान्य के अभाव में धूमत्व सामान्य का सद्भाव असम्भव है। यदि सामान्यलक्षण प्रत्यक्ष द्वारा व्यक्ति को व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान होना सम्भव हो तो प्रथम दर्शनकाल में ही उसे यह ज्ञान हो जाना चाहिये। तब उसे व्याप्ति सम्बन्ध के निश्चय के लिए न तो अनेक अन्वयव्यतिरेकी दृष्टान्तों के पुनः-पुनः प्रत्यक्ष की आवश्यकता होनी चाहिये और न ही इस प्रत्यक्ष द्वारा स्थापित व्याप्ति सम्बन्ध की तर्क से परीक्षा की जानी चाहिये।¹⁸ इस विवेचन से स्पष्ट है कि व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान प्रत्यक्ष से न होकर तर्क प्रमाण से होता है। न्याय दर्शन द्वारा तर्क के जिस रूप सम्भावना स्वरूप होने के कारण अप्रमाण माना गया है वह तर्क जैन दर्शन द्वारा मान्य प्रत्यक्ष का एक चरण 'ईहा' है तथा यह व्याप्ति सम्बन्ध के ज्ञान हेतु स्वीकृत तर्क प्रमाण नहीं है। तर्क प्रमाण विभिन्न प्रमाणों से प्राप्त सामग्री के आधार पर घटित होनेवाली विचारात्मक, अन्वेषणात्मक और परीक्षाप्रवण प्रक्रिया है तथा इस प्रक्रिया द्वारा व्याप्ति सम्बन्धों का ज्ञान होता है।

-
1. व्याप्तिर्हिसाध्यसाधनयोरविनाभावः । - न्यायकुमुदचन्द्र; पृष्ठ 419
 - इदमस्मिन्सत्येव भवत्यसति तु न भवत्येव । - परीक्षामुखसूत्र, 3.12
 - यथाऽग्नावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति च । - परीक्षामुखसूत्र, 3.13
 - साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः । - परीक्षामुखसूत्र, 3.15
 2. तर्कात्तन्निर्णयः - परीक्षामुखसूत्र, 3.19
 3. व्याप्तेः प्रत्यक्षानुपलम्भबलीद्यूतोहाख्य प्रमाणाद्प्रसिद्धेः । - प्रमेयकमलमार्तण्ड; पृष्ठ 178
 4. अविशंवादस्मृतेः फलस्य हेतुत्वात् प्रमाणं धारणा । स्मृतिसंज्ञायाप्रत्यवमर्शस्य । संज्ञा चिन्तायाः तर्कस्य । - लघीयस्त्रय स्ववृत्ति; गाथा 10
 - सुतरां च सकलसाध्यसाधनत्यक्त्युपसंहारेण तद्ग्रह इति साध्यसाधनदर्शन-स्मरणप्रत्यभिज्ञानोप-जनितस्तर्क एव प्रतीतिमाधातुमलम् । - जैन तर्कभाषा; पृष्ठ 10
 5. अध्यक्षस्यापरीक्षत्वादानुमान न परम्परा ।
अविनाभावसम्बन्धेऽव्यन्तर्व्याप्त्यावतिष्ठते ।
बहिर्दर्शनादर्शने धर्मिधर्मस्य न लिंगी लक्षणं तंदुलपाकादिवत् । तन्नैतावता व्याप्तिः अन्यत्र विचारात्, यतो व्यापकं निवर्तमानं व्याप्यं निवर्तयेत् ।

- प्रमाणसंग्रह-32 और उस पर स्ववृत्ति

6.साध्यसाधनयो स्वभावप्रतिबन्धे साक्षात्कृतेऽपि साकल्येन व्याप्ति परीक्षातः ।

- प्रमाणसंग्रह स्ववृत्ति-37

7. षट्खण्डागम में ईहा के लिए 6 पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया गया है :-

ईहा-ऊहा-अपोहा-मार्गणा-गवेषणा-मीमांसा - षट्खण्डागम 5/5/38

इन पदों का अर्थ स्पष्ट करते हुए वीरसेन स्वामी कहते हैं - "उत्पन्नसंशयविनाशाय ईहते चेष्टते अनया बुद्ध्या इति ईहा । अवगृहीतस्यार्थस्यानधिगतविशेषः उहमते तर्क्यते अनया इति ऊहा । अपोह्यते संशयनिबन्धविकल्पः अनया इति अपोहा । अनधिगतार्थविशेषो मृग्यते अन्विष्यते अनया इति मार्गणा । गवेष्यते इति गवेषणा । मीमांस्यते विचार्यते अवगृहीतो अर्थो विशेषरूपणे अनया इति मीमांसा ।- धवला; पुस्तक 13, पृष्ठ 242

8. संदेहादो उवरिमा, अवायादो ओरिमा, विच्चाले पयत्ता विचारबुद्धी ईहा णाम ।

- धवला; पुस्तक 13, पृष्ठ 17

9. उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूह ।

- परीक्षामुखसूत्र 3.11

10. प्रमेयकमलमार्तण्ड; पृष्ठ 348

11. अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तिस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः ।

- न्यायसूत्र 1.1.40

12. अविज्ञातत्त्वे सामान्यतो ज्ञाते धर्मिण्येकपक्षानुकूलकारणदर्शनात्तस्मिन् सम्भावनाप्रत्ययो भवितव्यतावभासस्तदितरपक्षशैथिल्यापादने तद्ग्राहकप्रमाणमनुग्राह्यतान्मुखं प्रवर्तयैस्तत्त्व-ज्ञानार्थमूहस्तर्कः इति ।

- न्यायमंजरी; भाग 2, पृष्ठ 145

13. तर्कभाषा; पृष्ठ 84

14. न्यायमंजरी; पृष्ठ 145

15. भारतीय दर्शन में अनुमान; पृष्ठ 156

16. अनुसन्धानेन हि व्याप्तिरूल्लिख्यते, ...प्रत्यक्षरूपता तु तस्य अनुपपन्ना विभिन्नसामग्रीविषयत्वात् । तद्भिन्न इन्द्रियादिसामग्रीकं सम्बद्धवर्तमानार्थविषयश्च प्रसिद्धम्, नचेदं तथा इति कथं प्रत्यक्षरूपतां प्रतिपादयेत् ।

- न्यायकुमुदचन्द्र; पृष्ठ 431

17. न्यायकुमुदचन्द्र; पृष्ठ 429

18. न्यायकुमुदचन्द्र; पृष्ठ 429

व्याख्याता, दर्शनशास्त्र
राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

आप्त का लक्षण

आप्तेनोत्सन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवे।5।

- रत्नकरण्ड श्रावकाचार, आचार्य समन्तभद्र

टीका - 'आप्तेन' भवितव्यं, 'नियोगेन' - निश्चयेन, नियमेन वा। किं विशिष्टेन? 'उत्सन्नदोषेण' - नष्ट दोषेण। तथा 'सर्वज्ञेन' - सर्वत्र विषयेऽशेषविशेषतः परिस्फुट परिज्ञानवता नियोगेन भवितव्यम्। तथा 'आगमेशिना' भव्यजनानां हेयोपादेय-तत्त्वप्रतिप्रतिहेतुभूतागम प्रतिपादकेन नियमेन भवितव्यम्। कुत एतदित्याह - 'नान्यथा ह्याप्तता भवेत्।' 'हि' यस्मात् अन्यथा उक्त विपरीतप्रकारेण, आप्तता न भवेत्।

टीकाकार - आचार्य प्रभाचन्द्र

अर्थ - जिसके (क्षुधा-पिपासा आदि) शारीरिक तथा (रागद्वेष आदि) आन्तरिक दोष नष्ट हो चुके हैं, जो समस्त पदार्थों को उनकी समस्त विशेषताओं के साथ स्पष्ट रूप से जानता है, जो आगम का स्वामी है अर्थात् जिसकी दिव्यध्वनि को सुनकर गणधर द्वादशांग रूप आगम की रचना करते हैं, जो इस तरह भव्य जीवों को हेय और उपादेय तत्त्वों का ज्ञान करानेवाले आगम का मूल प्रतिपादक है वही पुरुष आप्त-सच्चा देव हो सकता है। इस प्रकार सर्वज्ञ, वीतराग और हितोपदेशी पुरुष को आप्त कहते हैं।

परीक्षामुख एवं प्रमेयकमलमार्त्तण्ड में 'अनुमान' की अवधारणा

- डॉ. राजवीरसिंह शेखावत



जैन दर्शन में प्रमाण को ज्ञानरूप मानकर 'ज्ञान' को ही 'प्रमाण' स्वीकार किया गया है। उमास्वामी ने 'तत्त्वार्थसूत्र' (1.10) में ज्ञान के भेदों की चर्चा करते हुए ज्ञान को ही प्रमाण स्वीकार किया है तथा इस सन्दर्भ में लिखा है -

'तत्प्रमाणे'¹

और माणिक्यनन्दि ने 'परीक्षामुख' (1.1) में प्रमाण के स्वरूप की चर्चा करते हुए ज्ञान को ही प्रमाण स्वीकार किया है, उन्होंने लिखा है -

'स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्'²

माणिक्यनन्दि के अनुसार ज्ञान अथवा प्रमाण के दो प्रकार हैं - प्रत्यक्ष और परोक्ष।³ पुनः परोक्ष के पाँच भेद हैं - स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम।⁴ यहाँ हम परोक्ष के इन पाँच भेदों में से 'अनुमान' की, 'परीक्षामुख' एवं 'प्रमेयकमलमार्त्तण्ड' के विशेष सन्दर्भ में, चर्चा करेंगे।

1.1. अनुमान का लक्षण

माणिक्यनन्दि ने परीक्षामुख में अनुमान का लक्षण किया है -

'साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम्।' (3.10, 3.14)

अर्थात् साधन से साध्य के ज्ञान को 'अनुमान' कहते हैं। परीक्षामुख के इस सूत्र की व्याख्या करते हुए प्रभाचन्द्र ने प्रमेयकमलमार्तण्ड में अनुमान का लक्षण किया है - 'जो साध्य के अभाव में नियम से नहीं होता है ऐसे 'निश्चित साधन' से शक्य, अभिप्रेत और असिद्ध लक्षणवाले साध्य का जो ज्ञान होता है उसे 'अनुमान' कहते हैं।'⁵ ध्यातव्य है - प्रभाचन्द्र के अनुसार, साधन से होनेवाले साध्य के ज्ञान का अनुमान रूप होने के लिए यह आवश्यक है कि साधन में साध्य-अभाव के साथ साधन-अभाव की निश्चितता हो और साध्य में शक्य, अभिप्रेत और असिद्ध रूप तीन विशेषण हों। साधन और साध्य के इन विशेषणों के अभाव में उनके द्वारा होनेवाले ज्ञान में अनुमानपना सम्भव नहीं होगा, अर्थात् वह ज्ञान अनुमानरूप नहीं होगा। अन्य शब्दों में, वह अनुमान नहीं होगा। किन्तु यहाँ प्रश्न उठता है कि साधन और साध्य का स्वरूप क्या है? अथवा यूँ कहें कि अनुमान की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए साधन और साध्य की अवधारणाओं का स्पष्टीकरण आवश्यक है अर्थात् यदि यहाँ साधन और साध्य की चर्चा की जाए तो अनुमान की अवधारणा अधिक स्पष्ट होगी। दूसरे, ध्यातव्य है कि साधन, साध्य और पक्ष या धर्मी अनुमान के मौलिक घटक हैं। अतः यहाँ इनकी चर्चा अपेक्षित है।

1.2. अनुमान के घटक

1.2.1.1. साधन/हेतु

माणिक्यनन्दि ने (परीक्षामुख में) साधन अर्थात् हेतु का लक्षण किया है -

'साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः।' 3.10 (3.15)

अर्थात् साध्य के साथ जिसका अविनाभाव निश्चित हो उसे 'साधन' अर्थात् 'हेतु' कहते हैं। प्रभाचन्द्र ने माणिक्यनन्दि का समर्थन करते हुए हेतु का लक्षण किया है 'साध्याविनाभावित्व'⁶ और 'अन्यथानुपपन्नत्व'⁷। अर्थात् साध्य के साथ अविनाभाव नियम से हेतु का वर्तना और साध्य के बिना हेतु का नियम से नहीं होने का निश्चय, अर्थात् साध्याभाव में साधनाभाव का निश्चय। यह हेतु का असाधारण स्वभाव है (असाधारण स्वभाव ही किसी विषय का लक्षण होता है) और अनुमान की अनिवार्य शर्त। प्रभाचन्द्र के अनुसार हेतु के लिए यह आवश्यक है कि वह साध्य का गमक हो। और कोई हेतु साध्य का गमक तब हो सकता है जब वह साध्याविनाभावित्व और अन्यथानुपपन्नत्व से युक्त हो, अर्थात् हेतु साध्याविनाभावित्व और अन्यथानुपपन्नत्व से युक्त हो, अन्य शब्दों में हेतुसाध्याविनाभावित्व और अन्यथानुपपन्नत्व से युक्त होकर ही साध्य को सिद्ध कर सकता है, अन्यथा नहीं। अतः यही (साध्याविनाभावित्व) हेतु का प्रधान लक्षण है।

ध्यातव्य है - हेतु संदिग्ध, विपरीत और अव्युत्पन्न (गृहीत और अगृहीत पदार्थ का यथावत् निर्णय नहीं होना) पदार्थों को सिद्ध करने में ही समर्थ होता है, इनसे विपरीत पदार्थों को सिद्ध करने में नहीं; क्योंकि संदिग्ध आदि पदार्थों की सिद्धि के लिए ही अनुमान की आवश्यकता होती है, असंदिग्ध आदि पदार्थों की सिद्धि के लिए अनुमान की आवश्यकता नहीं होती है; क्योंकि वे तो सिद्ध ही होते हैं। और संदिग्ध आदि पदार्थों को सिद्ध करने में ही हेतु की सार्थकता है।

1.2.1.2. हेतु के प्रकार

माणिक्यनन्दि के अनुसार हेतु दो प्रकार का है -

1. उपलब्धि हेतु और 2. अनुपलब्धि हेतु।⁸

ध्यातव्य है - सामान्यतः उपलब्धि हेतु को विधि-साधक अर्थात् सद्भाव का साधक माना जाता है और अनुपलब्धि हेतु को प्रतिषेध-साधक अर्थात् अभाव का साधक। किन्तु माणिक्यनन्दी के अनुसार दोनों हेतु विधि और प्रतिषेध दोनों के साधक हैं, अर्थात् उपलब्धि हेतु भी विधि और प्रतिषेध दोनों का साधक है तथा अनुपलब्धि हेतु भी विधि और प्रतिषेध दोनों का साधक है, जैसा कि 'परीक्षामुख' (3.54, 3.58) में लिखा है -

“उपलब्धिर्विधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च”।

विधि और प्रतिषेध के आधार पर दोनों हेतुओं के पुनः दो-दो भेद हैं। उपलब्धि हेतु के दो भेद हैं -

1. अविरुद्धोपलब्धि हेतु और 2. विरुद्धोपलब्धि हेतु।

अविरुद्धोपलब्धि हेतु विधि-साधक है और विरुद्धोपलब्धि प्रतिषेध-साधक।

1. अविरुद्धोपलब्धि - पुनः अविरुद्धोपलब्धि के छः भेद किये हैं -

- | | |
|------------------------------------|--|
| (1) अविरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतु, | (2) अविरुद्धकार्योपलब्धि हेतु, |
| (3) अविरुद्धकाणोपलब्धि हेतु, | (4) अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतु, |
| (5) अविरुद्धउत्तरचरोपलब्धि हेतु और | (6) अविरुद्धसहचरोपलब्धि हेतु। ⁹ |

ज्ञातव्य है 'परीक्षामुख' एवं 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' में अविरुद्धोपलब्धि के इन छः भेदों के लक्षण नहीं दिये गये हैं बल्कि उनके मात्र उदाहरण दिये गये हैं जो निम्नलिखित रूप से हैं -

(1) अविरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतु - शब्द परिणामी¹⁰ है (प्रतिज्ञा); क्योंकि वह कृतक¹¹ है (हेतु), जो कृतक होता है वह परिणामी देखा जाता है, जैसे - घट (अन्वय दृष्टान्त), शब्द कृतक है (उपनयन), इसलिए वह परिणामी है (निगमन)। जो परिणामी नहीं होता है वह कृतक भी नहीं देखा जाता है, जैसे - बन्ध्यापुत्र (व्यतिरेक दृष्टान्त), शब्द कृतक है (उपनयन), अतः वह परिणामी है (निगमन)।¹²

यह अविरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतु का उदाहरण है। इस उदाहरण में 'कृतकत्व' हेतु है और 'परिणामित्व' साध्य। कृतकत्व और परिणामित्व में व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध पाया जाता है (जो अल्प देश में रहे उसे 'व्याप्य' कहते हैं और जो बहुत देश में रहे उसे 'व्यापक'। कृतकत्व केवल पुद्गल द्रव्य में रहने के कारण व्याप्य है और परिणामित्व आकाश आदि सभी द्रव्यों में पाये जाने के कारण व्यापक)। इसलिए कृतकत्व रूप व्याप्य से परिणामित्व रूप व्यापक की सिद्धि की गयी है। इस अनुमान में कृतकत्व रूप हेतु विधि-साधक (भावरूप साध्य की सिद्धि करनेवाला), व्याप्य और अविरुद्ध होने के कारण इसे अविरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतु का उदाहरण माना गया है। अतः कहा जा सकता है कि विधि-साधक, अविरुद्ध और व्याप्य रूप उपलब्ध हेतु को 'अविरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतु' कहते हैं। अन्य शब्दों में, साध्य के व्याप्य का पाया जाना 'अविरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतु' कहलाता है।

(2) अविरुद्धकार्योपलब्धि हेतु - अविरुद्धकार्योपलब्धि हेतु का उदाहरण दिया गया है कि - "इस देही (शरीरधारक प्राणी) में बुद्धि है; क्योंकि इसमें बुद्धि के अविरोधी कार्य, वचनादि, पाये जाते हैं।"¹³ इस उदाहरण में 'बुद्धि' साध्य है जो कि कारणरूप है और 'वचनादि' हेतु है जो कार्यरूप है। इस अनुमान में हेतु विधि-साधक एवं साध्य का अविरोधी कार्य है। इसलिए इसे अविरुद्धकार्योपलब्धि हेतु का उदाहरण माना गया है। इस उदाहरण के आधार पर अविरुद्धकार्योपलब्धि हेतु का लक्षण किया जा सकता है, साध्य के अविरोधी कार्य का पाया जाना, अर्थात् विधि-साधक अविरुद्ध कार्यरूप उपलब्ध हेतु को 'अविरुद्धकार्योपलब्धि हेतु' कहते हैं।

(3) अविरुद्धकारणोपलब्धि हेतु - और इसके विपरीत विधि-साधक अविरुद्ध कारणरूप उपलब्ध हेतु को 'अविरुद्धकारणोपलब्धि हेतु' कहते हैं। 'परीक्षामुख' में इसका उदाहरण दिया गया है कि "यहाँ छाया है; क्योंकि छाया का अविरोधी कारण छत्र पाया जाता है।"¹⁴ यहाँ 'छाया' साध्य है जो कार्य-रूप है और 'छत्र' हेतु है जो कारण-रूप है। इस अनुमान में विधि-साधक और साध्य का अविरोधी कारण-रूप हेतु

‘छत्र’ से कार्यरूप ‘छाया’ का अनुमान किया गया है। इसलिए इसे ‘अविरुद्धकारणोपलब्धि हेतु’ कहा गया है।

(4) अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतु - साध्य के अविरोधी पूर्वचर का पाया जाना ‘अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतु’ कहलाता है, जैसे - “एक मुहूर्त पश्चात् रोहिणी नक्षत्र का उदय होगा; क्योंकि अभी कृतिका नक्षत्र का उदय हो रहा है”¹⁵। धातव्य है - प्रतिदिन क्रम से एक-एक मुहूर्त के पश्चात् अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य आदि नक्षत्रों का उदय होता है। जब जिस नक्षत्र का उदय हो रहा होता है तब उसके पूर्ववर्ती नक्षत्र को ‘पूर्वचर’ और उत्तरवर्ती नक्षत्र को ‘उत्तरचर’ कहते हैं। अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतु के उपर्युक्त उदाहरण में ‘रोहिणी नक्षत्र का उदय’ साध्य है और ‘कृतिका नक्षत्र का उदय’ हेतु। ‘कृतिका नक्षत्र का उदय’ रूप हेतु ‘रोहिणी नक्षत्र का उदय’ रूप साध्य के पूर्ववर्ती है, अर्थात् इस अनुमान में हेतु साध्य का पूर्वचर है। अतः यह ‘अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतु’ का उदाहरण है।

(5) अविरुद्धउत्तरचरोपलब्धि हेतु - इसके विपरीत जब हेतु साध्य का उत्तरचर होता है, अर्थात् विधि-साधक अविरुद्ध उत्तरचर रूप उपलब्ध हेतु होता है तब उसे ‘अविरुद्धउत्तरचरोपलब्धि हेतु’ कहते हैं, उदाहरण के रूप में - “भरणी नक्षत्र का उदय एक मुहूर्त पहले हो चुका है; क्योंकि कृतिका का उदय हो रहा है”¹⁶। इस उदाहरण में ‘भरणी नक्षत्र का उदय’ साध्य है और ‘कृतिका नक्षत्र का उदय’ हेतु। और कृतिका नक्षत्र भरणी का उत्तरचर है। अतः यह ‘अविरुद्धउत्तरचरोपलब्धि हेतु’ का उदाहरण है।

(6) अविरुद्धसहचरोपलब्धि हेतु - विधि-साधक, अविरुद्ध सहचररूप उपलब्ध हेतु को अर्थात् जो साध्य के समकाल में हो तथा साध्य का न कारण हो और न कार्य, उसे ‘अविरुद्धसहचरोपलब्धि हेतु’ कहते हैं, जैसे - “इस मातुलिंगे (= बिजौरा = नारंगी के आकार का नींबू की जाति का फल) में रूप है, क्योंकि इसमें रस है”¹⁷। इस अनुमान में ‘रूप’ साध्य है और ‘रस’ हेतु तथा रसरूप हेतु साध्यरूप ‘रूप’ का अविरोधी सहचर है। अतः यह ‘अविरुद्धसहचरोपलब्धि हेतु’ का उदाहरण है।

2. विरुद्धोपलब्धि - उपलब्धि हेतु का दूसरा प्रकार है ‘विरुद्धोपलब्धि’। यहाँ विरुद्धोपलब्धि हेतु से अभिप्राय है प्रतिषेधरूप साध्य से जो विरुद्ध पदार्थ है उस विरुद्ध पदार्थ के सम्बन्धभूत व्याप्य, कार्य आदि की उपलब्धि होना।¹⁸ विरुद्धोपलब्धि हेतु के भी, अविरुद्धोपलब्धि हेतु की भाँति छः भेद हैं -

- (1) विरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतु, (2) विरुद्धकार्योपलब्धि हेतु,
 (3) विरुद्धकारणोपलब्धि हेतु, (4) विरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतु,
 (5) विरुद्धउत्तरचरोपलब्धि हेतु और (6) विरुद्धसहचरोपलब्धि हेतु।

ये सभी हेतु प्रतिषेध-साधक हैं, अर्थात् इन हेतुओं के द्वारा अभावरूप साध्य की सिद्धि की जाती है। 'परीक्षामुख' एवं 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' में इन हेतुओं के भी लक्षण नहीं दिये गये हैं, मात्र उदाहरण दिये गये हैं।

(1) **विरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतु** - परीक्षामुख में विरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतु का उदाहरण दिया गया है - "यहाँ पर शीत स्पर्श नहीं है; क्योंकि उष्णता है"।¹⁹ इस उदाहरण में 'शीत स्पर्श का अभाव' साध्य है और 'उष्णता' हेतु। किन्तु उष्णता अग्नि का व्याप्य है जो कि प्रतिषेध्यभूत शीतस्पर्श का विरोधी है। अतः यह विरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतु का उदाहरण है। इस उदाहरण के आधार पर विरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतु का लक्षण किया जा सकता है कि प्रतिषेध साधक, विरुद्ध तथा व्याप्यरूप हेतु का पाया जाना, अर्थात् साध्य पदार्थ के विरुद्ध पदार्थ के व्याप्य का पाया जाना 'विरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतु' कहलाता है।

(2) **विरुद्धकार्योपलब्धि हेतु** - विरुद्धकार्योपलब्धि हेतु का उदाहरण दिया गया है - "यहाँ पर शीत स्पर्श नहीं है, क्योंकि यहाँ धूम है"।²⁰ इस अनुमान में 'शीत स्पर्श का अभाव' साध्य है और 'धूम' हेतु। किन्तु 'धूम' प्रतिषेध्य साध्य शीत स्पर्श के विरोधी पदार्थ 'अग्नि' का कार्य है। इसलिए यह विरुद्धकार्योपलब्धि हेतु का उदाहरण है। अतः कहा जा सकता है कि प्रतिषेध साधक, विरोधी और कार्यरूप हेतु का पाया जाना, अर्थात् प्रतिषेध्य साध्य पदार्थ के विरुद्ध पदार्थ के कार्य का पाया जाना 'विरुद्धकार्योपलब्धि हेतु' कहलाता है।

(3) **विरुद्धकारणोपलब्धि हेतु** - और प्रतिषेध-साधक, विरुद्ध तथा कारणरूप उपलब्धि हेतु को 'विरुद्धकारणोपलब्धि हेतु' कहते हैं अथवा प्रतिषेध साध्य पदार्थ के विरुद्ध पदार्थ के कारण का पाया जाना 'विरुद्धकारणोपलब्धि हेतु' कहलाता है। उदाहरण के रूप में, इस प्राणी में सुख नहीं है, क्योंकि हृदय में शल्य है।²¹ इस अनुमान में 'प्राणी में सुख का अभाव' साध्य है और 'हृदय में शल्य होना' हेतु। यहाँ हेतु 'शल्य' सुख के विरोधी दुःख का कारण है। अतः यह विरुद्धकारणोपलब्धि हेतु का उदाहरण है।

(4) **विरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतु** - प्रतिषेध-साधक, विरुद्ध तथा पूर्वचररूप उपलब्धि हेतु को, अर्थात् प्रतिषेध्य साध्य पदार्थ के विरोधी पदार्थ के पूर्वचर का पाया जाना

‘विरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतु’ कहलाता है। उदाहरण के रूप में - एक मुहूर्त के पश्चात् रोहिणी नक्षत्र का उदय नहीं होगा, क्योंकि अभी रेवती नक्षत्र का उदय हो रहा है।²² यहाँ पर रोहिणी के उदय का विरोधी अश्विनी का उदय है, उसका पूर्वचर रेवती नक्षत्र है। अतः रेवती का उदय रोहिणी के विरुद्ध पूर्वचर कहलाता है।

(5) विरुद्धउत्तरचरोपलब्धि हेतु - प्रतिषेध्य साध्य पदार्थ के विरुद्ध पदार्थ के उत्तरचर का पाया जाना ‘विरुद्धउत्तरचरोपलब्धि हेतु’ कहलाता है। ‘परीक्षामुख’ में इसका उदाहरण दिया गया है कि एक मुहूर्त पहले भरणी का उदय नहीं हुआ है; क्योंकि पुष्य नक्षत्र का उदय हो रहा है।²³ यहाँ भरणी के उदय का विरोधी पुनर्वसु नक्षत्र का उदय है और उसका उत्तरचर पुष्य नक्षत्र का उदय है। अतः पुष्य नक्षत्र का उदय भरणी नक्षत्र के उदय का विरुद्ध उत्तरचर होने के कारण यह ‘विरुद्धोत्तरचरोपलब्धि हेतु’ का उदाहरण है।

(6) विरुद्धसहचरोपलब्धि हेतु - परीक्षामुख में विरुद्धसहचरोपलब्धि हेतु का उदाहरण दिया गया है - “इस भित्ति (दीवार) में उस ओर के भाग (परभाग) का अभाव नहीं है; क्योंकि इस ओर का भाग (अर्वाभाग) दिखाई दे रहा है”²⁴। इस उदाहरण में ‘दीवार के परभाग का अभाव’ साध्य पदार्थ है और साध्य पदार्थ का विरोधी पदार्थ है ‘दीवार के परभाग का सद्भाव’ तथा साध्य पदार्थ के विरोधी पदार्थ - दीवार के परभाग का सद्भाव - का सहचर है ‘दीवार के अर्वाभाग का सद्भाव’। अतः यह विरुद्धसहचरोपलब्धि हेतु का उदाहरण है। इससे स्पष्ट है कि प्रतिषेध साध्य पदार्थ के विरोधी पदार्थ के सहचर के सद्भाव को ‘विरुद्धसहचरोपलब्धि हेतु’ कहते हैं।

अनुपलब्धि हेतु - हेतु का दूसरा भेद है - ‘अनुपलब्धि हेतु’। अनुपलब्धि हेतु भी उपलब्धि हेतु के समान दो प्रकार का है -

1. अविरुद्ध अनुपलब्धि हेतु और 2. विरुद्ध अनुपलब्धि हेतु।

1. अविरुद्ध अनुपलब्धि हेतु - अविरुद्ध अनुपलब्धि हेतु प्रतिषेध-साधक होता है, अर्थात् अभाव को सिद्ध करनेवाला होता है। इसके सात भेद हैं -

- (1) अविरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतु, (2) अविरुद्धव्यापकानुपलब्धि हेतु,
- (3) अविरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु, (4) अविरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु,
- (5) अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि हेतु, (6) अविरुद्धोत्तरचरानुपलब्धि हेतु और
- (7) अविरुद्धसहचरानुपलब्धि हेतु।²⁵

परीक्षामुख एवं प्रमेयकमलमार्तण्ड में अविरुद्धोपलब्धि हेतु के भेदों की भाँति, अविरुद्ध अनुपलब्धि हेतु के भेदों के भी लक्षण नहीं दिये गये हैं। उनके मात्र उदाहरण दिये गये हैं जो निम्नलिखित रूप से हैं -

(1) **अविरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतु** - का उदाहरण दिया गया है - “इस भूतल पर घट नहीं है; क्योंकि उपलब्धि योग्य स्वभाव के होने पर भी वह अनुपलब्धि है”²⁶। इस उदाहरण में ‘घटाभाव’ साध्य है और ‘घट के उपलब्धि योग्य स्वभाव के होने पर भी अनुपलब्धि होना’ हेतु। इस अनुमान में घट के स्वभाव की अनुपलब्धि से घट के नहीं होने की सिद्धि की गई है। इसलिए यह अविरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतु का उदाहरण है। इस उदाहरण के आधार पर इसका लक्षण किया जा सकता है, साध्य पदार्थ के स्वभाव की अनुपलब्धि अथवा प्रतिषेध साधक, अविरुद्ध तथा स्वभाव रूप अनुपलब्धि हेतु को ‘अविरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतु’ कहते हैं।

(2) **अविरुद्धव्यापकानुपलब्धि हेतु** - साध्य पदार्थ के व्यापक के अभाव को ‘अविरुद्धव्यापकानुपलब्धि हेतु’ कहते हैं, जैसे - “यहाँ पर शीशम नहीं है, क्योंकि यहाँ वृक्ष की अनुपलब्धि है”²⁷। इस अनुमान में ‘शीशम का अभाव’ साध्य है और ‘वृक्ष की अनुपलब्धि’ हेतु। ‘शीशमत्व’ व्याप्य है और ‘वृक्षत्व’ व्यापक। जब व्यापक का अभाव होता है तब व्याप्य का अभाव अनिवार्य रूप से होता है। यहाँ अनुपलब्धि रूप व्यापक को हेतु बनाया गया है। इसलिए यह अविरुद्धव्यापकानुपलब्धि हेतु है।

(3) **अविरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु** - इसका उदाहरण है - “यहाँ पर अप्रतिबद्ध सामर्थ्यवाली अग्नि नहीं है; क्योंकि यहाँ धूम का अभाव है”²⁸। इस अनुमान में ‘अप्रतिबद्ध सामर्थ्यवाली अग्नि का अभाव’ साध्य है और ‘धूम का अभाव’ हेतु। अप्रतिबद्ध सामर्थ्यवाली अग्नि ‘कारण’ है और धूम ‘कार्य’। ‘अप्रतिबद्ध सामर्थ्य’ से यहाँ अभिप्राय है अपने कार्य करने में समर्थ। इस अनुमान में साध्य की सिद्धि साध्य पदार्थ ‘अग्नि’ के अविरोधी कार्य ‘धूम’ के अभाव से की गई है। अतः यह हेतु अविरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु है। इसका लक्षण हम इस प्रकार कर सकते हैं कि साध्य पदार्थ के कार्य की अनुपलब्धि को, अर्थात् प्रतिषेध साधक, अविरुद्ध और कार्यरूप अनुपलब्धि हेतु को ‘अविरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु’ कहते हैं।

(4) **अविरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु** - इसके विपरीत साध्य पदार्थ के कारण की अनुपलब्धि को ‘अविरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु’ कहते हैं, जैसे - “यहाँ धूम नहीं है; क्योंकि यहाँ अग्नि नहीं है”²⁹। इस अनुमान में ‘धूमाभाव’ साध्य है और ‘अग्न्याभाव’ हेतु। धूम ‘कार्य’ है और ‘अग्नि’ कारण। यहाँ धूम के अविरुद्ध अग्नि की अनुपलब्धि रूप हेतु से धूम के अभाव की सिद्धि की गई है। इसलिए यह हेतु अविरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु है।

(5) **अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि हेतु** - प्रतिषेध साधक, अविरुद्ध, और पूर्वचर का अनुपलब्धि हेतु को अथवा साध्य पदार्थ के पूर्वचर की अनुपलब्धि को

‘अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि हेतु’ कहते हैं, जैसे - “एक मुहूर्त के पश्चात् रोहिणी नक्षत्र का उदय नहीं होगा; क्योंकि अभी कृत्तिका नक्षत्र का उदय नहीं हुआ।”³⁰। इस अनुमान में साध्य पदार्थ, रोहिणी नक्षत्र का उदय, का पूर्वचर कृत्तिका नक्षत्र का उदय है, और उसके अभाव से रोहिणी नक्षत्र के उदय के अभाव को सिद्ध किया गया है। अतः यह हेतु अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि हेतु है।

(6) अविरुद्धोत्तरचरानुपलब्धि हेतु - इसके विपरीत साध्य पदार्थ के उत्तरचर की अनुपलब्धि को ‘अविरुद्धोत्तरचरानुपलब्धि हेतु’ कहते हैं, जैसे - “एक मुहूर्त से पहले भरणी नक्षत्र का उदय नहीं हुआ है; क्योंकि अभी कृत्तिका नक्षत्र का उदय नहीं हुआ है”³¹। इस अनुमान में साध्य पदार्थ, भरणी नक्षत्र का उदय, का उत्तरचर है कृत्तिका नक्षत्र का उदय और उसके - कृत्तिका नक्षत्र के उदय के - अभाव से भरणी नक्षत्र के उदय के अभाव को सिद्ध किया गया है। अतः यह हेतु अविरुद्धोत्तरचरानुपलब्धि हेतु है।

(7) अविरुद्धसहचरानुपलब्धि हेतु - साध्य पदार्थ के सहचर की अनुपलब्धि को ‘अविरुद्धसहचरानुपलब्धि हेतु’ कहते हैं, जैसे - “इस समतुला (= समान या ठीक तोलनेवाली तराजू) में ‘उन्नाम’ (= एक ओर नीचापन) नहीं है; क्योंकि इसमें ‘नाम’ (= दूसरी ओर नीचापन) नहीं पाया जाता है”³²। इस उदाहरण में तराजू में ‘उन्नाम का अभाव’ साध्य है और ‘नाम की अनुपलब्धि’ हेतु। ‘नाम’ की अनुपलब्धि से ‘उन्नाम’ की अनुपलब्धि की सिद्धि की गई है, और ‘नाम’ उन्नाम का अविरुद्धी सहचर है। अतः यह अविरुद्धसहचरानुपलब्धि हेतु है।

2. विरुद्धानुपलब्धि हेतु - अनुपलब्धि हेतु का दूसरा भेद है - विरुद्धानुपलब्धि। विरुद्धानुपलब्धि हेतु विधि-साधक है, अर्थात् सद्भाव को सिद्ध करनेवाला है। ध्यातव्य है, यद्यपि विरुद्धानुपलब्धि हेतु अनुपलब्धि अथवा अभावरूप होता है किन्तु, फिर भी, अपने साध्य के सद्भाव को सिद्ध करता है। विधिरूप साध्य के रहने पर विरुद्धानुपलब्धि हेतु के तीन भेद हैं -

- (1) विरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु, (2) विरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु और
- (3) विरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतु।

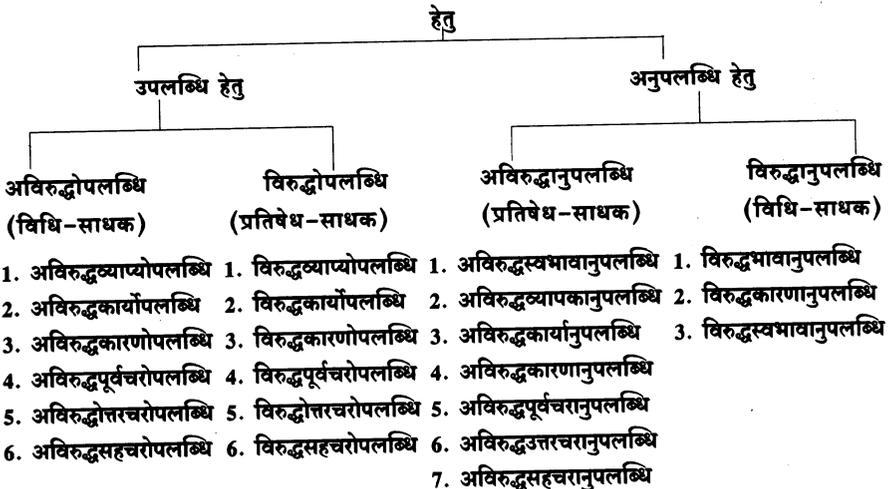
(1) विरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु - साध्य से विरुद्ध पदार्थ के कार्य का नहीं पाया जाना ‘विरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु’ कहलाता है, जैसे - “इस प्राणी में व्याधि-विशेष है; क्योंकि इसमें रोगरहित चेष्टा, अर्थात् निरोग के समान चेष्टा नहीं पाई जाती है।”³⁴ इस

अनुमान में 'व्याधि-विशेष का सद्भाव' साध्य है और 'रोगरहित चेष्टा का अभाव' हेतु। साध्य का विरोधी है 'व्याधि-विशेष की अनुपलब्धि', और उसका कार्य है 'रोगरहित चेष्टा' उस कार्य की अनुपलब्धि, अर्थात् साध्य से विरुद्ध पदार्थ के रूप 'रोगरहित चेष्टा' का अभाव विरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु है।

(2) विरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु - साध्य से विरुद्ध पदार्थ के कारण की अनुपलब्धि 'विरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु' कहलाता है, जैसे - "इस प्राणी में दुःख है; क्योंकि इष्ट-संयोग (=अभीष्ट पदार्थ का संयोग) का अभाव है"³⁵। इस अनुमान में 'दुःख' साध्य है और 'इष्ट-संयोग का अभाव' हेतु। साध्यरूप दुःख का विरोधी 'सुख' है तथा इसका कारण इष्ट-संयोग है। उस इष्ट-संयोग रूप कारण की इस प्राणी में अनुपलब्धि है। अतः यह विरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु है।

(3) विरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतु - साध्य के विरुद्ध पदार्थ के स्वभाव का नहीं पाया जाना 'विरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतु' कहलाता है, जैसे - "वस्तु अनेकान्तात्मक है; क्योंकि एकान्तस्वरूप पाया नहीं जाता है"³⁶। इस अनुमान में 'अनेकान्तात्मक' साध्य है और 'एकान्त स्वरूप का अभाव' हेतु। वस्तु के अनेकान्तात्मक रूप साध्य का विरोधी 'नित्यत्व' आदि एकान्तिक पदार्थ हैं और उनका स्वरूप एकान्तिक है। किन्तु एकान्तिक स्वरूप वास्तविक नहीं है। इसलिए उसका अभाव है। इस प्रकार साध्य के विरोधी पदार्थ, नित्यत्व आदि पदार्थ, के एकान्त स्वरूप अनुपलब्धि होने के कारण यह 'विरुद्धस्वभावानुपलब्धि' हेतु है।

हेतु के उपर्युक्त भेदों को हम निम्नलिखित चार्ट के द्वारा दर्शा सकते हैं -



1.2.1.3. हेत्वाभास

ध्यातव्य है - सामान्यतः हेत्वाभास की चर्चा अनुमान के अन्त में की जाती है। किन्तु हेतु की अवधारणा को सही रूप में समझने के लिए यह आवश्यक है कि हेत्वाभास का ज्ञान हो। अतः यहाँ हेतु का प्रकरण होने के कारण हेत्वाभास की चर्चा यहीं की जा रही है।

सामान्यतः हेतु के आभास को हेत्वाभास कहते हैं, अर्थात् जो साधन साध्य को सिद्ध करने में समर्थ नहीं है, जो वस्तुतः हेतु नहीं है किन्तु हेतु के समान प्रतीत होता है उस अहेतु का हेतु के रूप में आभास 'हेत्वाभास' कहलाता है। प्रभाचन्द्र ने प्रमेयकमलमार्तण्ड में हेत्वाभास का लक्षण किया है -

“.....तद्विपरीतास्तु हेत्वाभासाः”³⁷

अर्थात् (साध्य के साथ जिसका अविनाभाव निश्चित है वह हेतु है और) उसके विपरीत हेत्वाभास। अन्य शब्दों में, साध्य के साथ जिसका अविनाभाव निश्चित नहीं है वह हेत्वाभास है। माणिक्यनन्दी के अनुसार हेत्वाभास चार प्रकार का है -

1. असिद्ध, 2. विरुद्ध, 3. अनेकान्तिक और 4. अकिञ्चित्कर।³⁸

1. असिद्ध हेत्वाभास

माणिक्यनन्दि ने असिद्ध हेत्वाभास का लक्षण किया है -

“असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः” 6.22 (5.22)

अर्थात् जिस हेतु की सत्ता का अभाव हो अथवा निश्चय न हो, उसे 'असिद्धहेत्वाभास' कहते हैं। असिद्ध हेत्वाभास के दो भेद हैं -

- (1) स्वरूपासिद्ध और (2) सन्दिग्धासिद्ध।

(1) **स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास** - जिस हेतु का स्वरूप से ही अभाव हो, अर्थात् जिस हेतु की साध्य में सत्ता नहीं हो, उसे 'स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास' कहते हैं, जैसे - शब्द परिणामी है; क्योंकि वह चाक्षुष है (चक्षु से जाना जाता है)³⁹ इस अनुमान में 'चाक्षुष' हेतु है जो स्वरूप से ही असिद्ध है; क्योंकि शब्द स्वरूप से श्रावण है न की चाक्षुष। अतः शब्द में चाक्षुष का अभाव होने के कारण वह स्वरूप से असिद्ध है।

(2) **सन्दिग्धासिद्ध हेत्वाभास** - जिस हेतु के रहने का निश्चय न हो, अर्थात् सन्देह हो, उसे 'सन्दिग्धासिद्ध हेत्वाभास' कहते हैं, जैसे मुग्ध बुद्धि पुरुष (जिसने अग्नि और धूम के सम्बन्ध को यथावत् नहीं जाना है, ऐसा भोला-भाला व्यक्ति अथवा अल्पज्ञ बुद्धिवाला व्यक्ति) के प्रति कहना कि यहाँ अग्नि है; क्योंकि यहाँ धूम है। इस

अनुमान का हेतु 'धूम' सन्दिग्धासिद्ध हेत्वाभास है; क्योंकि मुग्ध बुद्धि पुरुष को अग्नि और धूम के सम्बन्ध का निश्चय नहीं होने के कारण चूल्हे से तत्काल उतारे हुए दाल-भात आदि के पात्र से निकलनेवाले वाष्प (भाप) को देखकर अग्नि का सन्देह हो सकता है।⁴⁰

2. विरुद्ध हेत्वाभास

विरुद्ध हेत्वाभास का लक्षण किया गया है -

“विपरीतनिश्चिताविनाभावो विरुद्धोऽपरिणामी शब्दः कृतकत्वात्।” 6.29 (5.29)

अर्थात् साध्य से विपरीत पदार्थ के साथ जिसका अविनाभाव निश्चित हो, उसे 'विरुद्ध हेत्वाभास' कहते हैं, जैसे शब्द अपरिणामी है; क्योंकि वह कृतक है। इस अनुमान में हेतु 'कृतकत्व' साध्य 'अपरिणामी' के विरोधी 'परिणामी' के साथ व्याप्त है अर्थात् कृतकत्व रूप हेतु का अपरिणामी रूप साध्य के विपरीत पदार्थ 'परिणामी' के साथ व्याप्त है। इसलिए यह विरुद्ध हेत्वाभास है।

3. अनैकान्तिक हेत्वाभास

परीक्षामुख में अनैकान्तिक (व्यभिचारी) हेत्वाभास का लक्षण किया गया है -

“विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः।” 6.30 (5.30)

अर्थात्, जिसका विपक्ष में रहना भी अविरुद्ध है, अन्य शब्दों में, जो हेतु पक्ष-सपक्ष के समान विपक्ष में भी बिना किसी विरोध के रहता है वह 'अनैकान्तिक हेत्वाभास' कहलाता है। इसके दो भेद हैं -

(1) निश्चितविपक्षवृत्ति और (2) शंकितविपक्षवृत्ति।

(1) निश्चितविपक्षवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास - जो हेतु निश्चितरूप से, पक्ष-सपक्ष के समान, विपक्ष में भी रहता है उसे 'निश्चितविपक्षवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास' कहते हैं, जैसे - शब्द अनित्य है; क्योंकि वह प्रमेय (प्रमाण का विषय) है। जो प्रमेय होता वह अनित्य होता है जैसे घट। इस अनुमान में हेतु 'प्रमेयत्व' पक्ष 'शब्द' और सपक्ष 'घट' में रहता हुआ अनित्य के विपक्ष नित्य आकाश में भी रहता है। अतः यह हेतु निश्चितविपक्षवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास है।

(2) शंकितविपक्षवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास - जिसका विपक्ष में रहना संशयास्पद हो वह 'शंकितविपक्षवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास' है, जैसे - सर्वज्ञ नहीं

है; क्योंकि वह बोलता है। इस अनुमान का हेतु 'वक्तृत्व' सर्वज्ञ और असर्वज्ञ दोनों में पाया जा सकता है; क्योंकि सर्वज्ञ के साथ वक्तृत्व का कोई विरोध नहीं है (जो सर्वज्ञ है वह बोलता नहीं है ऐसा कोई नियम नहीं है।) सर्वज्ञत्व और वक्तृत्व में विरोध इसलिए नहीं है; क्योंकि ज्ञान के उत्कर्ष में वचनों का अपकर्ष नहीं देखा जाता है बल्कि प्रकर्षता ही देखी जाती है। इसलिए किसी पुरुष-विशेष में सर्वज्ञत्व भी रह सकता है और वक्तृत्व भी रह सकता है। अतः हेतु वक्तृत्व के विपक्ष 'सर्वज्ञ' में रहने की शंका होने के कारण इस हेतु को 'शंकितविपक्षवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास' कहते हैं।

4. अकिञ्चित्कर हेत्वाभास

अकिञ्चित्कर हेत्वाभास का लक्षण किया गया है -

“सिद्धे प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्ये हेतुरकिञ्चित्करः।” 6.35 (5.35)

अर्थात् साध्य के सिद्ध होने पर और प्रत्यक्षादि प्रमाण से बाधित होने पर प्रयुक्त हेतु, अन्य शब्दों में, जब साध्य पहले से ही सिद्ध हो अथवा प्रत्यक्ष आदि किसी प्रमाण से बाधित हो, उस साध्य की सिद्धि के लिए जो हेतु दिया जाता है जो कि उस साध्य का कुछ भी सिद्धि नहीं कर पाता है; क्योंकि या तो साध्य पहले से ही सिद्ध है या बाधित है, उस हेतु को 'अकिञ्चित्कर हेत्वाभास' कहते हैं, जैसे शब्द श्रावण (श्रावण इन्द्रिय का विषय) है; क्योंकि वह शब्द है। इस अनुमान में 'शब्दत्व' हेतु के द्वारा साध्य 'शब्द श्रावणत्व' अर्थात् 'शब्द का कान से सुना जाना' की सिद्धि की जा रही है जो व्यर्थ है; क्योंकि 'शब्द का कान से सुना जाना' तो पहले से ही सिद्ध है। शब्दत्व के द्वारा कुछ भी सिद्धि नहीं हो रही है। अतः यह 'असिद्ध अकिञ्चित्कर हेत्वाभास' है। और प्रमाणबाधित अकिञ्चित्कर हेत्वाभास का उदाहरण है - अग्नि उष्ण नहीं है; क्योंकि वह द्रव्य है।⁴¹ इस अनुमान में 'द्रव्यत्व' हेतु के द्वारा साध्य 'अग्नि की उष्णतारहितता' की सिद्धि की जा रही है। किन्तु अग्नि का उष्णतारहित तो प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है। अतः इस हेतु के द्वारा साध्य का कुछ भी सिद्ध नहीं होने के कारण यह हेतु प्रमाणबाधित अकिञ्चित्कर हेत्वाभास है।

1.2.2. साध्य

माणिक्यनन्दि ने 'साध्य' का लक्षण किया है -

“इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम्।” 3.16 (3.20)

अर्थात् इष्ट, अबाधित और असिद्ध पदार्थ को 'साध्य' कहते हैं। जिसे वादी⁴² सिद्ध करना चाहता है उसे 'इष्ट' कहते हैं। जिसमें प्रत्यक्ष आदि किसी प्रमाण से बाधा न आती हो उसे 'अबाधित' कहते हैं। और जो किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं हुआ हो उसे 'असिद्ध' कहते हैं। प्रभाचन्द्र ने प्रमेयकमलमार्त्तण्ड में असिद्ध का लक्षण किया है कि "संशय आदि के व्यवच्छेद से पदार्थ का स्वरूप ज्ञात होना 'सिद्ध' कहलाता है और इसके विपरीत 'असिद्ध',⁴³ अर्थात् पदार्थ के स्वरूप का ज्ञात नहीं होना 'असिद्ध' कहलाता है।

ध्यातव्य है, साध्य के इस लक्षण में इष्ट आदि तीन विशेषणों को समाविष्ट करने के पीछे एक विशेष प्रयोजन रहा है, वह यह कि साध्य के इस लक्षण में 'इष्ट' पद को समाहित कर साध्य रूप से अनिष्ट पदार्थों का परिहार किया गया है अर्थात् अनिष्ट पदार्थ साध्य रूप नहीं हो अथवा अनिष्ट पदार्थों में साध्यपना नहीं माना जाए। इसलिए साध्य के लक्षण में इष्ट पद का ग्रहण किया गया है।⁴⁴ यदि साध्य के लक्षण में 'इष्ट' पद प्रयुक्त नहीं किया गया होता तब 'अनिष्ट' पदार्थों में साध्यपना आ जाता अर्थात् अनिष्ट पदार्थ भी साध्य रूप हो जाते (और साध्य के लक्षण में अतिव्याप्ति दोष का प्रसंग आ जाता)। जैसे शब्द में सर्वथा नित्यपना सिद्ध करना जैनों के लिए अनिष्ट है; क्योंकि जैन 'शब्द' को सर्वथा नित्य नहीं मानते हैं।

साध्य के लक्षण में 'अबाधित' पद प्रयुक्त कर साध्य रूप से प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से बाधित पदार्थों का परिहार किया गया है। अन्य शब्दों में, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से बाधित पदार्थों के, जैसे शब्द को अश्रावण कहना प्रत्यक्ष बाधि है, ऐसे पदार्थों के साध्यपना (साध्यरूप) नहीं हो। इसलिए साध्य के लक्षण में 'अबाधित' पद प्रयुक्त किया गया है। यदि साध्य के लक्षण में अबाधित को समाहित नहीं किया गया होता तब प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से बाधित पदार्थ भी साध्य रूप अर्थात् साध्य की श्रेणी में आ जाते। और, संदिग्ध,⁴⁵ विपर्यस्त⁴⁶ और अव्युत्पन्न⁴⁷ इन तीन प्रकार के पदार्थों के साध्यपना प्रतिपादन करने के लिए अर्थात् संदिग्ध, विपर्यस्त और अव्युत्पन्न पदार्थ साध्य रूप हो सके, इस हेतु साध्य के लक्षण में 'असिद्ध' पद का ग्रहण किया गया है।⁴⁸

ज्ञातव्य है, माणिक्यनन्दि और प्रभाचन्द्र के अनुसार साध्य के लक्षण में प्रयुक्त 'इष्ट' और 'असिद्ध' विशेषणों में से 'इष्ट' विशेषण तो वादी की अपेक्षा से है; क्योंकि, पहले, अपने इष्ट तत्त्व के प्रतिपादन के लिए अर्थात् दूसरे को समझाने के लिए इच्छा (इच्छा का विषयभूत पदार्थ इष्ट कहा जाता है) वादी (वक्ता) की होती है, न कि प्रतिवादी की। दूसरे, वादी का जो इष्ट होता है वही 'साध्य' होता है, न कि सबका इष्ट

साध्य होता है। और 'असिद्ध' विशेषण प्रतिवादी की अपेक्षा से प्रयुक्त हुआ है,⁴⁹ क्योंकि प्रतिवादी को साध्य का स्वरूप ज्ञात नहीं होता है।

ध्यातव्य है, सामान्यतः 'धर्म' - धर्मी अथवा पक्ष का साध्य रूप विशेषण - को ही साध्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। किन्तु माणिक्यनन्दी और प्रभाचन्द्र के अनुसार कहीं पर 'धर्म' साध्य होता है और कहीं पर 'धर्म-विशिष्ट धर्मी'।⁵⁰ उनके अनुसार 'व्याप्ति-काल' में 'धर्म', जैसे अग्नि, ही साध्य होता है; क्योंकि उसके साथ ही हेतु की व्याप्ति संभव है। और 'प्रयोग-काल'⁵² में 'धर्म विशिष्ट धर्मी' - जैसे अग्नि रूप धर्म से विशिष्ट/विशेषित पर्वत - साध्य होता है; क्योंकि 'धर्मी' के प्रतिनियत साध्य धर्म रूप विशेषण द्वारा विशिष्ट होने के कारण उसी को सिद्ध करना इष्ट होता है।⁵³ अन्य शब्दों में, साध्य धर्म के विशेषण द्वारा युक्त होने के कारण धर्मी को ही सिद्ध करना इष्ट होता है। इसलिए प्रयोगकाल में धर्म विशिष्ट धर्मी-धर्म - धर्मी की संयुक्ता - साध्य होता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि 'धर्मी' क्या है अथवा धर्मी का स्वरूप क्या है?

1.2.3. धर्मी/पक्ष

धर्मी को 'पक्ष' कहते हैं, जैसा कि माणिक्यनन्दि ने लिखा है -

“पक्ष इति यावत्” 3.22 (3.26)

और जिसमें साध्य रहता है उसे पक्ष अर्थात् धर्मी कहते हैं। पुनः माणिक्यनन्दि ने धर्मी को परिभाषित करते हुए लिखा है -

“प्रसिद्धो धर्मी।” 3.23 (3.27)

अर्थात्, धर्मी प्रसिद्ध होता है। धर्मी अथवा पक्ष की प्रसिद्धि अर्थात् सिद्धि तीन प्रकार से होती है - प्रमाण से, विकल्प से और उभय से। धर्मी अथवा पक्ष किसी अनुमान में प्रमाण सिद्ध होता है, किसी अनुमान में विकल्प सिद्ध होता है और किसी अनुमान में उभय सिद्ध। जब धर्मी या पक्ष प्रत्यक्ष आदि प्रमाण से सिद्ध होता है तब उसे प्रमाणसिद्ध कहते हैं, जैसे - यह प्रदेश अग्नियुक्त है।⁵⁴ यहाँ अग्नियुक्त प्रदेश प्रत्यक्ष प्रमाणसिद्ध है। जिस धर्मी या पक्ष का अस्तित्व और नास्तित्व दोनों ही किसी प्रमाण से सिद्ध न हो, तब उसकी सिद्धि को विकल्पसिद्ध कहते हैं। ध्यातव्य है जब धर्मी विकल्पसिद्ध होता है तब सत्ता और असत्ता दोनों ही साध्य होते हैं।⁵⁵ अर्थात् जब धर्मी/पक्ष विकल्पसिद्ध होता है तब साध्य सत्ता रूप भी हो सकता है और असत्ता रूप भी। सुनिश्चित बाधक-प्रमाण के अभाव से तो 'सत्ता' साध्य है और प्राप्त योग्य

की अनुपलब्धि से 'असत्ता' साध्य है, जैसे सर्वज्ञ है और खर-विषाण नहीं है।⁵⁶ यहाँ पर 'सर्वज्ञ' और 'खर-विषाण' दोनों ही विकल्पसिद्ध धर्मी हैं। सर्वज्ञ में 'उसका कोई सुनिश्चित बाधक प्रमाण नहीं पाया जाता है' इस हेतु से उसकी 'सत्ता' की सिद्धि की गई है और खर-विषाण में 'प्राप्त योग्य होकर भी अनुपलब्ध है' इस हेतु से उसकी 'असत्ता' (नास्तित्व) की सिद्धि की गई है। अतः कहा जा सकता है कि विकल्पसिद्ध धर्मी में 'सत्ता' और 'असत्ता' दोनों ही साध्य हैं। और, प्रमाण तथा विकल्प इन दोनों से सिद्ध धर्मी को उभयसिद्ध धर्मी कहते हैं, जैसे - शब्द परिणामी है⁵⁷। यहाँ पर नियत दिदेशवर्ती वर्तमान कालवाले शब्द की परिणमनशीलता तो प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है किन्तु अनियत दिदेशवर्ती वर्तमान, भूत और भविष्यत् कालवाले शब्दों की परिणमनशीलता विकल्प से सिद्ध है। अतः शब्द को उभयसिद्ध धर्मी माना गया है। ज्ञातव्य है, प्रमाणसिद्ध और उभयसिद्ध धर्मी में 'साध्य धर्म विशिष्टता' (साध्य से विशिष्टता अथवा धर्म विशिष्ट धर्मी) अर्थात् 'संयुक्तता' साध्य होता है।

पक्षाभास - ध्यातव्य है, अनुमान करते समय यह निश्चित कर लेना चाहिए कि जो अनुमान किया जा रहा है उसका 'पक्ष' या 'धर्मी' वास्तविक है अथवा नहीं। अनेक बार जो 'पक्ष' नहीं होता है उसे 'पक्ष' या 'धर्मी' मान लिया जाता है जिसके कारण होनेवाला अनुमान ज्ञान अयथार्थ होता है। किसी अनुमान ज्ञान के यथार्थ होने के लिए यह आवश्यक है कि उसका 'पक्ष' वास्तविक हो, और पक्ष की वास्तविकता इस बात पर निर्भर करती है कि उस पक्ष में जिस साध्य की सिद्धि की जा रही है वह यथार्थ में साध्य है अथवा नहीं। जहाँ साध्य यथार्थ होता है वहाँ पक्ष भी वास्तविक होता है और जहाँ साध्य अयथार्थ होता है वहाँ पक्ष भी अवास्तविक होता है, अर्थात् जहाँ साध्य अयथार्थ होता है वहाँ पक्ष नहीं 'पक्षाभास' होता है। किसी पक्ष-विशेष में अनिष्ट, बाधित और सिद्ध पदार्थ को साध्य बनाना या सिद्ध करना 'पक्षाभास' है।⁵⁸ पक्षाभास तीन प्रकार का है - (1) अनिष्ट पक्षाभास, (2) बाधित पक्षाभास और (3) सिद्ध पक्षाभास।

(1) **अनिष्ट पक्षाभास** - जिस पक्ष में अनिष्टपना हो अर्थात् अनिष्ट साध्य हो तब उसे 'अनिष्ट पक्षाभास' कहते हैं, जैसे - 'शब्द नित्य है', यहाँ पक्ष 'शब्द' है जिसमें अनिष्टपना है; क्योंकि जैनों के अनुसार शब्द नित्य नहीं है बल्कि अनित्य है।

(2) **बाधित पक्षाभास** - किसी पक्ष-विशेष में प्रमाण, लोक और स्व-वचन से बाधित साध्य को सिद्ध करना 'बाधित पक्षाभास' कहलाता है। बाधित पक्षाभास पाँच प्रकार का है⁵⁹ - (i) प्रत्यक्ष बाधित, (ii) अनुमान बाधित, (iii) आगम बाधित,

(iv) लोक बाधित और (v) स्व-वचन बाधित पक्षाभास। किसी पक्ष-विशेष में प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित साध्य को मानना या सिद्ध करना 'प्रत्यक्ष बाधित पक्षाभास' कहलाता है, जैसे - अग्नि उष्णतारहित है, क्योंकि वह द्रव्य है। किसी पक्ष-विशेष में अनुमान प्रमाण से बाधित साध्य को सिद्ध करना 'अनुमान बाधित पक्षाभास' कहलाता है, जैसे - शब्द अपरिणामी है, क्योंकि वह कृतक है। किसी पक्ष-विशेष में आगम प्रमाण से बाधित साध्य को स्वीकार करना 'आगम बाधित पक्षाभास' कहलाता है, जैसे - धर्म परलोक में दुःख देनेवाला है, क्योंकि वह पुरुष के आश्रित है। किसी पक्ष-विशेष में लोकबाधित साध्य को सिद्ध करना 'लोक बाधित पक्षाभास' हैं, जैसे - मनुष्य के सिर का कपाल पवित्र है; क्योंकि वह प्राणी का अंग है। (लोक में नर-कपाल को अपवित्र माना गया है।) किसी पक्ष-विशेष में स्व-वचन से बाधित साध्य की सत्ता को स्वीकार करना 'स्व-वचन बाधित पक्षाभास' कहलाता है, जैसे - मेरी माता बन्ध्या है।

(3) सिद्ध पक्षाभास - किसी पक्ष-विशेष में पूर्व सिद्ध साध्य को स्वीकार करना या सिद्ध करना 'सिद्ध पक्षाभास' है, जैसे - शब्द श्रावण है।⁶⁰ इस अनुमान में शब्द कान से सुना जाता है यह तो पहले से ही ज्ञात है अर्थात् सिद्ध है। अतः यह सिद्ध पक्षाभास है।

1.3. अनुमान के अवयव

माणिक्यनन्दि के अनुसार 'वाद' (शास्त्रार्थ) में उपर्युक्त 'पक्ष' (प्रतिज्ञा) और 'हेतु' ये दो ही अवयव होते हैं, उदाहरण आदि नहीं, और 'शास्त्र' (शास्त्र के पठन-पाठन-काल) में आवश्यकता अनुसार तीन, चार और पाँच अवयव हो सकते हैं।⁶¹ ध्यातव्य है, 'वाद' में व्युत्पन्न पुरुषों (न्याय-शास्त्र में प्रवीण व्यक्ति) का ही अधिकार होता है। अव्युत्पन्न पुरुषों का नहीं तथा व्युत्पन्न-प्रयोग तथोपपत्ति या अन्यथानुपपत्ति के द्वारा किये जाने का प्रावधान है अर्थात् व्युत्पन्न पुरुषों के लिए अनुमान का प्रयोग प्रतिज्ञा के साथ तथोपपत्ति या अन्यथानुपपत्ति रूप हेतु से किया जाता है, जैसे यह प्रदेश अग्निवाला है; क्योंकि अग्निवाला होने पर ही धूमवाला हो सकता है अथवा अग्नि के अभाव में धूमवाला नहीं हो सकता।⁶² इस प्रकार जिस हेतु का साध्य के साथ अविनाभाव/व्याप्ति निश्चित है ऐसे हेतु के प्रयोगमात्र से ही, उदाहरण आदि के बिना ही, व्युत्पन्न व्यक्ति व्याप्ति का निश्चय कर लेते हैं।⁶³ दूसरे, ज्ञातव्य है, किसी हेतु का स्व-साध्य के प्रति हेतुपना या हेतुत्व होने में अथवा हेतुत्व प्रदान करने में 'समर्थन'⁶⁴ ही उपयोगी है और वही हेतु का वास्तविक रूप है। वही साध्य की सिद्धि में उपयोगी है। इस सन्दर्भ में मणिक्यनन्दि ने परीक्षामुख में लिखा है -

“समर्थनं वा वरं हेतुरूपम्... तदुपयोगात्” । (3.41)

इसलिए साध्य की सिद्धि के लिए उदाहरण, उपनय और निगमन के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। माणिक्यनन्दि ने उदाहरण आदि के प्रयोग की आवश्यकता अथवा उपयोगिता को नकारते हुए लिखा है कि ‘उदाहरण’ के प्रयोग की आवश्यकता तीन स्थानों पर हो सकती है - साध्य का ज्ञान कराने के लिए, हेतु का अविनाभाव बतलाने के लिए, और व्याप्ति का स्मरण करने के लिए। किन्तु तीनों ही स्थानों पर उदाहरण के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। पहले, साध्य का ज्ञान कराने के लिए उदाहरण की आवश्यकता इसलिए नहीं है क्योंकि साध्य का ज्ञान साध्य के साथ अविनाभाव रूप निश्चित (यथोक्त या साध्याविनाभावी) हेतु के प्रयोग से ही हो जाता है⁶⁵, अर्थात् साध्य के साथ जिसका अविनाभाव है ऐसे हेतु के द्वारा ही साध्य का बोध हो जाने से उदाहरण की आवश्यकता नहीं रहती है। दूसरे, हेतु का साध्य के साथ अविनाभाव निश्चित करने के लिए भी उदाहरण की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि विपक्ष में बाधक प्रमाण से ही अविनाभाव का निश्चय हो जाता है।⁶⁶ अर्थात् अमुक हेतु विपक्ष में सर्वथा असम्भव है, इस प्रकार के बाधक प्रमाण से ही हेतु का अविनाभाव सिद्ध हो जाता है। और तीसरे, व्याप्ति स्मरण के लिए भी उदाहरण के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि व्याप्ति का स्मरण तो ‘साध्य के बिना नहीं होनेवाले हेतु’ के प्रयोग से ही हो जाता है।⁶⁷ इनके अतिरिक्त, साध्य की सिद्धि में उदाहरण का प्रयोग उपयोगी नहीं बल्कि अनुपयोगी है; क्योंकि उपनय और निगमन के बिना यदि केवल उदाहरण का प्रयोग किया जाए तो वह साध्य धर्मवाले धर्मी (पक्ष) में साध्य के सिद्ध करने में सन्देह उत्पन्न करा देता है।⁶⁸ अतः कहा जा सकता है कि उदाहरण का प्रयोग साध्य की सिद्धि के लिए अनुपयोगी और संशय का कारण है।

माणिक्यनन्दि और प्रभाचन्द्र के अनुसार ‘उपनय’ और ‘निगमन’ भी अनुमान के अवयव नहीं हैं; क्योंकि साध्यधर्मी में, साध्य और हेतु का कथन करने से ही संशय दूर हो जाता है,⁶⁹ इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि वादकाल में उदाहरण, उपनय और निगमन अनुमान के अवयव नहीं होते हैं।

किन्तु, जैसाकि हम ऊपर कह आये हैं कि शास्त्रकाल में उदाहरण, उपनय और निगमन का उपयोग है। यहाँ धातव्य है कि वादकाल के अवयवों - पक्ष और हेतु - के स्वरूप की चर्चा तो ऊपर, अनुमान के घटकों के सन्दर्भ में की जा चुकी है, किन्तु उदाहरण, उपनय और निगमन के स्वरूप की चर्चा नहीं हुई है। अतः यहाँ प्रश्न उठता है कि इनका, उदाहरण आदि का, स्वरूप क्या है? प्रत्युत्तर में, जहाँ पर वादी और

प्रतिवादी के द्वारा बिना विवाद के साध्य और साधन दोनों को अन्वय रूप से अथवा व्यतिरेक रूप से दिखाया जाए उसे 'उदाहरण' या 'दृष्टान्त' कहते हैं। उदाहरण या दृष्टान्त दो प्रकार का है - (क) अन्वय दृष्टान्त और (ख) व्यतिरेक दृष्टान्त -

दृष्टान्तो द्वेषा अन्वयव्यतिरेकभेदात् । (परीक्षामुख, 3.44)

(i) **अन्वय दृष्टान्त** - जहाँ पर साध्य से व्याप्त साधन को अर्थात् साध्य के साथ निश्चय से व्याप्ति रखनेवाले साधन को दिखाया जाए उसे 'अन्वय दृष्टान्त' कहते हैं,⁷⁰ जैसे - जहाँ-जहाँ धूम होता है वहाँ-वहाँ अग्नि होती है, उदाहरण के रूप में रसोईघर ।

(ii) **व्यतिरेक दृष्टान्त** - जहाँ पर साध्य के अभाव में साधन का अभाव दिखलाया जाए उसे 'व्यतिरेक दृष्टान्त' कहते हैं,⁷¹ जैसे - जहाँ अग्नि नहीं होती है वहाँ धूम भी नहीं होता है यथा जलाशय ।

'उपनय' के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए परीक्षामुख (3.46) में लिखा है-

“हेतोरुपसंहार उपनयः”

अर्थात् हेतु के उपसंहार को 'उपनय' कहते हैं। अन्य शब्दों में, हेतु का पक्षधर्म रूप से दुहराना उपनय है, जैसे - उसी प्रकार यह भी धूमवाला है।

और, प्रतिज्ञा के उपसंहार को 'निगमन' कहते हैं -

“प्रतिज्ञायास्तु निगमनम्” (परीक्षामुख, 3.47)

अर्थात् प्रतिज्ञा का दुहराना निगमन है, जैसे 'अतः यह अग्निवाला है' ।

1.4. अविनाभाव (व्याप्ति)

1.4.1. अविनाभाव का स्वरूप

ऊपर हमने अनुमान के घटकों, विशेषतः साधन और साध्य के सन्दर्भ में चर्चा करते हुए देखा कि साधन/हेतु का प्रधान लक्षण अविनाभावित्व है और साध्य तथा साधन के सम्बन्ध को अविनाभाव कहते हैं। किन्तु यहाँ प्रश्न उठता है कि इस सम्बन्ध में अविनाभाव का स्वरूप क्या है? प्रत्युत्तर में, माणिक्यनन्दि ने अविनाभाव के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है -

“सहक्रमभावनियमोऽविनाभावः ।” 3.12 (3.16)

अर्थात् सहभाव नियम और क्रमभाव नियम अविनाभाव है। ध्यातव्य है - सहभाव नियम और क्रमभाव नियम अविनाभाव का स्वरूप भी है और अविनाभाव के भेद भी। युगपत् अर्थात् एकसाथ रहनेवाले साध्य और साधन के सम्बन्ध को 'सहभाव नियम'

कहते हैं। यह नियम सहचारी (साथ रहनेवाला) और व्याप्य-व्यापक पदार्थों में पाया जात है,⁷² जैसे - नीबू, आम आदि पदार्थों में रूप और रस सहचारी है; क्योंकि इन पदार्थों में 'रूप' रस को छोड़कर या 'रस' रूप को छोड़कर नहीं पाये जाते हैं; बल्कि दोनों साथ-साथ रहते हैं। इसी प्रकार शिंशपात्व और वृक्षत्व व्याप्य-व्यापक पदार्थ हैं। इनमें से 'शिंशपात्व' वृक्षत्व को छोड़कर कहीं नहीं पाया जाता, शिंशपात्व जब भी और जहाँ भी पाया जाता है वृक्षत्व के साथ ही पाया जाता है। इस प्रकार सहचारी और व्याप्य-व्यापक पदार्थों में सहभाव नियम अर्थात् सहभाव रूप अविनाभाव सम्बन्ध पाया जाता है।

काल के भेद से क्रमपूर्वक होनेवाले साध्य-साधन के सम्बन्ध को 'क्रमभाव नियम' कहते हैं, यह नियम पूर्वचर-उत्तरचर में और कारण-कार्य में पाया जाता है, जैसे - कृत्तिका नक्षत्र का उदय और रोहिणी नक्षत्र का उदय पूर्वचर-उत्तरचर है, क्योंकि कृत्तिका नक्षत्र का उदय रोहिणी नक्षत्र के उदय से एक मुहूर्त पहले होता है और रोहिणी नक्षत्र का उदय कृत्तिका नक्षत्र के उदय से एक मुहूर्त पीछे होता है। इसी प्रकार अग्नि की सत्ता धूम की सत्ता से पहले है। अतः पूर्वचर-उत्तरचर और कारण-कार्य में क्रमभाव नियम अर्थात् क्रमभाव रूप अविनाभाव सम्बन्ध पाया जाता है।

1.4.2. अविनाभाव का निश्चय (ग्रहण)

अविनाभाव अथवा व्याप्ति के सन्दर्भ में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि अविनाभाव या व्याप्ति का ज्ञान कैसे होता है, अर्थात् अविनाभाव के निश्चय अथवा ग्रहण का साधन क्या है? प्रत्युत्तर में, माणिक्यनन्दि और प्रभाचन्द्र के अनुसार अविनाभाव सम्बन्ध का निर्णय 'तर्क' प्रमाण से होता है, जैसा कि माणिक्यनन्दि ने 'परीक्षामुख' (3.15/3.19) में लिखा है -

“तर्कात्तन्निर्णयः”

और तर्क के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है -

“उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः, इदमस्मिन् सत्येव भवत्यसति न भवत्येवेति च यथाम्नावेव धूमस्तदयावे न भवत्येवेति च।”

(परीक्षामुख, 3.7-9 से अथवा 3.11-13)

अर्थात् उपलम्भ (साध्य के होने पर ही साधन का होना) (अन्वय) और अनुपलम्भ (साध्य के नहीं होने पर साधन का नहीं होना), (व्यतिरेक) के निमित्त से जो व्याप्ति का ज्ञान होता है उसे 'ऊह' अर्थात् 'तर्क' कहते हैं, जैसे - यह साधन रूप वस्तु इस

साध्य रूप वस्तु के होने पर ही होती है और साध्य रूप वस्तु के नहीं होने पर नहीं होती है, उदाहरण के रूप में - अग्नि के होने पर ही धूम होता है, अग्नि के अभाव में धूम नहीं होता है।

ज्ञातव्य है, प्रभाचन्द्र के अनुसार अविनाभाव या व्याप्ति सदैव इन्द्रियगम्य साध्य-साधन में ही नहीं पाया जाता है अपितु अनेकबार अनुमान और आगमगम्य परोक्ष साध्य-साधन में भी अविनाभाव या व्याप्ति पाई जाती है। अतः अविनाभाव या व्याप्ति के निश्चय या ज्ञान में अनुमान और आगम भी निमित्त है। किन्तु वहाँ भी उनकी व्याप्ति के ज्ञान में उपलम्भ-अनुपलम्भ निमित्त होने के कारण उनका संग्रह तर्क प्रमाण में हो जाता है। इसलिए व्याप्ति निश्चय के निमित्त या साधन के रूप में उनकी अलग से चर्चा नहीं की गई है। दूसरे, स्मृति और प्रत्यभिज्ञान भी व्याप्ति ग्रहण या निश्चय के साधन है। किन्तु ये दोनों भी तर्क प्रमाण के निमित्त हैं और 'तर्क प्रमाण' व्याप्ति-ग्रहण का साधन है। अतः इनकी भी अलग से, स्वतंत्र रूप से, चर्चा नहीं की गई है।⁷³

1.5. अनुमान के भेद

माणिक्यनन्दि और प्रभाचन्द्र के अनुसार अनुमान दो प्रकार का है -

1. स्वार्थानुमान और 2. परार्थानुमान, जैसा कि 'परीक्षामुख' (3.48-49) में लिखा है -

“तदनुमानं द्वेधा। स्वार्थपरार्थभेदात्।”

1. स्वार्थानुमान - उन्होंने स्वार्थानुमान के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है -

“स्वार्थमुक्तलक्षणम्”। (3.50)

अर्थात् ऊपर जो अनुमान सामान्य का लक्षण किया गया है वही साधन से होनेवाला साध्य का ज्ञान - स्वार्थानुमान है। अन्य शब्दों में, दूसरे के वचनों के बिना स्वतः ही साधन से साध्य का जो ज्ञान अपने लिए होता है उसे 'स्वार्थानुमान' कहते हैं। इस सन्दर्भ में प्रभाचन्द्र ने (प्रमेयकमलमार्तण्ड, सूत्र 3.54 की टीका में) लिखा है -

“स्वार्थमनुमानं साधनात्साध्यविज्ञानमित्युक्त लक्षणम्”।

2. परार्थानुमान - और स्वार्थानुमान के विषयभूत अर्थ का परामर्श (विषय करना) करनेवाले वचनों से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे 'परार्थानुमान' कहते हैं।⁷⁴ अन्य शब्दों में, दूसरे के वचनों के द्वारा होनेवाले साधन से साध्य के ज्ञान को परार्थानुमान कहते हैं। परार्थानुमान के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए प्रभाचन्द्र ने लिखा है -

“तस्य स्वार्थानुमानस्यार्थः साध्यसाधने तत्परामर्शिवचनाज्जातं यत्साध्यविज्ञानं तत्परार्थानुमानम्।”⁷⁵

1.6. अनुमान का विषय

माणिक्यनन्दि और प्रभाचन्द्र के अनुसार अनुमान का विषय ‘साध्य’ है, और व्याप्तिकाल में ‘धर्म’ साध्य होता है तथा प्रयोगकाल में ‘धर्म विशिष्टधर्मी’, अर्थात् व्याप्तिकाल में अनुमान ‘धर्म’ को प्रकाशित करता है और प्रयोगकाल में ‘धर्म विशिष्टधर्मी’ को। इन पर चर्चा ऊपर की जा चुकी है। अतः यहाँ इनकी विस्तार से चर्चा नहीं की जा रही है।

1.7. अनुमान का फल

परीक्षामुख (5.1) के अनुसार अज्ञान की निवृत्ति, हान, उपादान, और उपेक्षा ये प्रमाण के फल हैं - अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम्। इनमें से अज्ञान की निवृत्ति प्रमाण या ज्ञान का साक्षात्फल⁷⁶ है और हान, उपादान एवं उपेक्षा ये पारम्पर्यफल⁷⁷ हैं। अनुमान के सन्दर्भ में देखें तब कहा जा सकता है - ‘साध्य’ अर्थात् व्याप्तिकाल में ‘धर्म’ और प्रयोगकाल में ‘धर्म विशिष्टधर्मी’ के अज्ञान की निवृत्ति होकर उसका प्रकाशित हो जाना अनुमान का साक्षात्फल है। साध्य को जान लेने के पश्चात् अनिष्ट या अहितकर साध्य का परित्याग कर देना ‘हान फल’ है, इष्ट या हितकर साध्य को ग्रहण कर लेना ‘उपादान फल’ है। और साध्य के हेय-उपादेय नहीं होने पर उसके प्रति उदासीन रहना ‘उपेक्षा फल’ है। अनुमान के इन फलों को ‘स्व’ और ‘पर’ दोनों के ही सन्दर्भ में ग्रहण करना चाहिए।

1.8. अनुमानाभास

साधन के द्वारा होनेवाला साध्य का ज्ञान सदैव यथार्थ नहीं होता है, अनेकबार वह अयथार्थ भी होता है। अनुमान की यथार्थता और अयथार्थता उसके पक्ष, हेतु और अन्य अवयवों पर निर्भर करती है। यदि पक्ष, हेतु और अन्य अवयव सद् हैं तब अनुमान यथार्थ होगा और यदि वे असद् हैं तब अनुमान अयथार्थ होगा, अर्थात् अयथार्थ पक्ष या अयथार्थ हेतु अथवा अन्य अयथार्थ अवयव के द्वारा होनेवाला साधन से साध्य का ज्ञान अनुमानाभास होगा।⁷⁸

1. तत्त्वार्थसूत्र, सूत्र 1.10 (सर्वार्थसिद्धि में संकलित), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, छठा संस्करण, 1995.
2. परीक्षामुख, सूत्र 1.1. (प्रमेयरत्नमाला में संकलित) चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1964.

3. (1) तद् द्वेधा । प्रत्यक्षेतर भेदात् । वही, सूत्र 2.1 एवं 2.2.
(2) परोक्षमितरत् । वही, सूत्र 3.1.
4. प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदम् । वही, सूत्र 3.2.
5. साध्याऽभावाऽसम्भवनियमनिश्चयलक्षणात् साधनादेव हि शक्याऽभिप्रेताप्रसिद्धत्वलक्षणस्य साध्यस्यैव यद्विज्ञानं तदनुमानम् ।
प्रमेयकमलमार्तण्ड, (परीक्षामुख, सूत्र 3.14 की टीका), पृ. 354, सत्यभामाबाई पाण्डुरंग, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1941.
6. प्रमेयकमलमार्तण्ड, भाग द्वितीय (परीक्षामुख, सूत्र 3.15 की टीका), वृ. 327, 328, 363, 388, श्री लाला मुसद्दीलाल जैन चेरीटेबल ट्रस्ट, 2/4 अन्सारी रोड, दरियागंज, देहली-110006.
7. वही, पृ. 322.
8. स हेतुर्द्वेषोपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात् । परीक्षामुख, सूत्र 3.53 (3.57)
9. वही, सूत्र 3.55 (3.59)
10. जो प्रतिसमय परिणमनशील होकर भी अर्थात् पूर्व आकार का परित्याग कर और उत्तर आकार को धारण करते हुए भी दोनों अवस्थाओं में अपने स्वत्व को कायम रखता है उसे परिणामी कहते हैं । ऐसा परिणामीपना न सर्वथा कूटस्थ नित्य पदार्थ में सम्भव है और न ही सर्वथा क्षणिक पदार्थ में । बल्कि उत्पाद-व्यय के होते हुए भी ध्रुव (स्थिर) रहनेवाले पदार्थों में सम्भव है ।
प्रमेयरत्नमाला, (हिन्दी), पृ. 188, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1964.
11. जो पदार्थ अपनी उत्पत्ति में अन्य के व्यापार की अपेक्षा रखता है उसे 'कृतक' कहते हैं । वह कृतकपना न तो कूटस्थ नित्य पदार्थ में सम्भव है और न ही सर्वथा क्षणिक पदार्थ में ।
वही, पृ. 187-188.
12. परीक्षामुख, सूत्र 3.61 (3.65) (सर्वार्थसिद्धि में संकलित) भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, छठा संस्करण, 1995.
13. वही, सूत्र 3.62 (3.66)
14. वही, सूत्र 3.63 (3.67)
15. वही, सूत्र 3.64 (3.68)
16. वही, सूत्र 3.65 (3.69)

17. वही, सूत्र 3.66 (3.70)
18. प्रमेयकमलमार्त्तण्ड, भाग द्वितीय, पृ. 404, श्री लाला मुसद्दीलाल जैन चेरीटेबल ट्रस्ट, 2/4 अन्सारी रोड, दरियागंज, देहली, प्रथम संस्करण, वि.नि. सं. 2054.
19. परीक्षामुख, सूत्र 3.68 (3.72)
20. वही, सूत्र 3.69 (3.73)
21. वही, सूत्र 3.70 (3.74)
22. वही, सूत्र 3.71 (3.75)
23. वही, सूत्र 3.72 (3.76)
24. वही, सूत्र 3.73 (3.77)
25. वही, सूत्र 3.74 (3.78)
26. वही, सूत्र 3.75 (3.79)
27. वही, सूत्र 3.76 (3.80)
28. वही, सूत्र 3.77 (3.81)
29. वही, सूत्र 3.78 (3.82)
30. वही, सूत्र 3.79 (3.83)
31. वही, सूत्र 3.80 (3.84)
32. वही, सूत्र 3.81 (3.85)
33. वही, सूत्र 3.82 (3.86)
34. वही, सूत्र 3.83 (3.87)
35. वही, सूत्र 3.84 (3.88)
36. वही, सूत्र 3.85 (3.89)
37. प्रमेयकमलमार्त्तण्ड, भाग-तृतीय (परीक्षामुख, सूत्र 5.21 की टीका), पृ. 525, श्री लाला मुसद्दीलाल जैन चेरीटेबल ट्रस्ट, 2/4, अन्सारी रोड, दरियागंज, देहली, प्रथम संस्करण, वि.नि. सं. 2504
38. परीक्षामुख, सूत्र 6.21.
39. वही, सूत्र 6.23.
40. वही, सूत्र 6.25-26.
41. वही, सूत्र 6.36.
42. (1) वाद के समय जो पहले अपने पक्ष को स्थापित करता है उसे 'वादी' कहते हैं।
(2) इच्छा का विषयभूत पदार्थ 'इष्ट' कहलाता है।

43. संशयादिव्यवच्छेदेन हि प्रतिपन्नमर्थस्वरूपं सिद्धमुच्यते, तद्विपरीतमसिद्धम् ।
प्रमेयकमलमार्त्तण्ड, (परीक्षामुख, सूत्र 3.20 की टीका) पृ. 369, सत्यभामा बाई
पाण्डुरंग निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1941.
44. परीक्षामुख, सूत्र 3.18 (3.22)
45. किसी स्थान पर अन्धकार आदि के कारण खड़े हुए पदार्थ को देखकर यह स्थाणु है
अथवा पुरुष? इस प्रकार किसी एक का निश्चय नहीं होने से उभय कोटि (पक्ष) के
परामर्श करनेवाला संशय से संयुक्त पदार्थ को 'संदिग्ध' कहते हैं। प्रमेयरत्नमाला
(हिन्दी), पृ. 149.
46. यथार्थ से विपरीत वस्तु का निश्चय करनेवाले विपर्यय ज्ञान के विषयभूत पदार्थ, जैसे
सीप में चाँदी आदि पदार्थ, 'विपर्यस्त' कहलाते हैं।
वही, पृ. 149.
47. अनिर्णीत वस्तु को 'अव्युत्पन्न' कहते हैं। अर्थात् नाम, जाति, संख्या आदि के विशेष
परिज्ञान न होने से अनिर्णीत विषयवाले अनध्यवसाय ज्ञान से ग्राह्य पदार्थ को 'अव्युत्पन्न'
कहते हैं।
वही, पृ. 150.
48. परीक्षामुख, सूत्र 3.17 (3.21)
49. (1) वही, सूत्र 3.19-20 (3.23-24)
(2) प्रमेयकमलमार्त्तण्ड, भाग-द्वितीय (परीक्षामुख सूत्र 3.23-24 की टीका), पृ.
367-368, श्री लाला मुसद्दीलाल जैन चेरीटेबल ट्रस्ट, 2/4 अन्सारी रोड, दरियागंज
देहली-110006.
50. परीक्षामुख, सूत्र 3.21 (3.25)
51. जहाँ-जहाँ साधन होता है वहाँ-वहाँ साध्य होता है, जहाँ साध्य नहीं होता है वहाँ
साधन भी नहीं होता है, जैसे - जहाँ-जहाँ धूम होता है वहाँ-वहाँ आग होती है और
जहाँ आग नहीं होती वहाँ धूम भी नहीं होता है। इस प्रकार से जब किसी को साध्य-
साधन के अविनाभाव या व्याप्ति का ज्ञान कराया जाता है, तब उसे 'व्याप्ति काल'
कहते हैं।
52. यह पर्वत अग्निवाला है; क्योंकि यह धूमवाला है, इस प्रकार से अनुमान के प्रयोग
करने को 'प्रयोग काल' कहते हैं। अर्थात् जब किसी पदार्थ की सत्ता-असत्ता को
सिद्ध करने के लिए अनुमान का उपयोग किया जाता है उसे अनुमान का 'प्रयोग काल'
कहते हैं।

53. (1) प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्मविशिष्टता। परीक्षामुख, सूत्र 3.26 (3.30)
 * व्याप्तौ तु साध्यं धर्म एव। वही, सूत्र 3.28 (3.32)
- (2) प्रयोगकाले तु तेन साध्यधर्मेण विशिष्टो धर्मा साध्यमभिधीयते, प्रतिनियतसाध्यधर्म-
 विशेषणविशिष्टतया हि धर्मिणः साधयितु मिष्टत्वात् साध्यव्यपदेशाविरोधः।
 प्रमेयकमलमार्तण्ड, (परीक्षामुख, सूत्र 3.25 की टीका), पृ. 371.
54. परीक्षामुख, सूत्र 3.27 (3.31)
55. वही, सूत्र 3.24 (3.28)
56. वही, सूत्र 3.25 (3.29)
57. वही, सूत्र 3.27 (3.31)
58. वही, सूत्र 6.12
59. वही, सूत्र 6.13 से 20
60. वही, सूत्र 6.14
61. वही, सूत्र 3.33, 3.42 (3.37, 3.46)
62. वही, सूत्र 3.90, 3.91 (3.94, 3.95)
63. वही, सूत्र 3.92 (3.96)
64. हेतु के असिद्ध आदि दोषों को दूर करके स्वसाध्य के साथ उसका अविनाभाव स्थापित करना 'समर्थन' कहलाता है।
65. वही, सूत्र 3.34 (3.38)
66. वही, सूत्र 3.35 (3.39)
67. वही, सूत्र 3.37, 3.92 (3.41, 3.96)
68. वही, सूत्र 3.38 (3.42)
69. वही, सूत्र 3.40 (3.44)
70. वही, सूत्र 3.44 (3.48)
71. वही, सूत्र 3.45 (3.49)
72. सहचारिणोर्व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः। वही, सूत्र 3.13 (3.17)
73. प्रमेयकमलमार्तण्ड, भाग-द्वितीय, (परीक्षामुख, सूत्र 3.11 से 13 की टीका) पृ. 304 से 307, श्री लाला मुसद्दीलाल जैन चेरीटेबल ट्रस्ट, 2/4, अन्सारी रोड, दरियागंज, देहली-110006.
74. परामर्थं तु तदर्थपरामर्शिवचनाज्जातम्। वही, सूत्र 3.51 (3.55)
75. प्रमेयकमलमार्तण्ड, (परीक्षामुख, सूत्र 3.55 की टीका), पृ. 378, सत्यभामाबाई पाण्डुरंग, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् 1941.

76. वस्तु के जानने के साथ ही तत्काल होनेवाले फल को साक्षात्फल कहते हैं। जब हम किसी अज्ञात वस्तु को प्रमाण से जानते हैं तब तत्सम्बन्धी अज्ञान तत्काल दूर हो जाता है। वही अज्ञान की निवृत्ति प्रमाण का साक्षात्फल है।
77. वस्तु के जानने के पश्चात् परम्परा से प्राप्त होनेवाले फल को 'पारम्पर्यफल' कहते हैं। वह हान, उपादान और उपेक्षा के भेद से तीन प्रकार का होता है। वस्तु को जानने के पश्चात् वस्तु के अनिष्ट या अहितकर होने पर उसका परित्याग कर देने को 'हान' कहते हैं, वस्तु के इष्ट या हितकर होने पर उसका ग्रहण करने को 'उपादान' कहते हैं, और इष्ट-अनिष्ट नहीं होने पर उदासीन रहने को 'उपेक्षा' कहते हैं।
78. परीक्षामुख, सूत्र 6.11 से 6.50.

एसोसियेट प्रोफेसर - दर्शनशास्त्र
 18, पुराना रोडवेज वर्कशॉप, सिविल लाइन्स,
 भरतपुर-321001 (राज.)
 मो. 09414208003
 E-mail- Dr.R.S.Shekhawat@gmail.com

□ □ □

आप्त का स्वरूप

क्षुत्पिपासाजरातङ्क जन्मान्तकभयस्मयाः।

न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते।6।

- रत्नकरण्ड श्रावकाचार, आचार्य समन्तभद्र

- जिसके भूख-प्यास-बुढ़ापा-रोग-जन्म-मृत्यु-भय-गर्व-राग-द्वेष-मोह-चिन्ता-अरति-निद्रा-विस्मय-मद-स्वेद और खेद - ये अठारह दोष नहीं हैं वह आप्त/सच्चा देव कहा जाता है।

विशेषार्थ - आप्त-अरहन्त भगवान् क्षुधा-तृषा आदि अठारह दोषों से रहित होते हैं इसलिए वीतराग कहलाते हैं। केवलज्ञान प्रकट होते ही औदारिक शरीर परमौदारिक शरीर के रूप में परिवर्तित हो जाता है। उसमें से त्रस तथा बादर निगोदिया जीव पृथक् हो जाते हैं। उस शरीर पर वृद्धावस्था का कोई प्रभाव नहीं रहता। असाता वेदनीय कर्म के उदीरणा-तीव्र उदय का अभाव होने से राग-द्वेष-मोह-भय आदि दोष नहीं होते। दर्शनावरण कर्म के क्षय हो जाने से निद्रा नहीं होती। यद्यपि भुज्यमान वर्तमान मनुष्य आयु का सद्भाव है तथापि आगामी आयु का बन्ध न होने से उन्हें जन्मधारण नहीं करना पड़ता। उनकी मृत्यु नहीं होती, निर्वाण/मोक्ष होता है। मृत्यु उसे कहते हैं जिसके बाद जन्म धारण करना पड़े और निर्वाण उसे कहते हैं जिसके होने पर फिर जन्म न धारण करना पड़े। अरिहन्त के क्षुधा-तृष्णा का अभाव होने से कवलाहार (ग्रास लेकर आहार करना) नहीं होता।

आगम

* आप्तवचनादि निबन्धमर्थज्ञानमागमः।3.95।

- परीक्षामुख

- आप्त के वचन आदि के द्वारा होनेवाले अर्थ (पदार्थ) के ज्ञान को आगम कहते हैं।

ख्यातिवाद : प्रमेयकमलमार्त्तण्ड के प्रकाश में

- डॉ. वीरसागर जैन



‘ख्यातिवाद’ प्रायः सभी भारतीय दर्शनों का एक प्रमुख विषय है, परन्तु जैन-ग्रन्थों में इसका विस्तृत विवचेन मात्र प्रभाचन्द्राचार्य के ‘प्रमेयकमलमार्त्तण्ड’ एवं ‘न्यायकुमुदचन्द्र’ में ही देखने को मिलता है। यद्यपि ज्ञानमीमांसा हेतु इस विषय को समझना भी बहुत आवश्यक है, परन्तु वर्तमान में अनेक लोग इस विषय को कठिन प्रतीत होने के कारण छोड़ देते हैं। यहाँ तक कि प्रमेयकमलमार्त्तण्ड जो विभिन्न विश्वविद्यालयों में निर्धारित पाठ्यग्रन्थ है, के छात्र और अध्यापक भी इस विषय की कठिन होने के कारण उपेक्षा करते देखे जाते हैं। अतः यहाँ प्रस्तुत आलेख द्वारा इसी विषय को सरलतापूर्वक स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जा रहा है। आलेख का मुख्य आधार ‘प्रमेयकमलमार्त्तण्ड’ को ही बनाया गया है। आशा है, विभिन्न विश्वविद्यालयों के छात्रों को भी इससे लाभ होगा।

कहा जा चुका है कि ‘ख्यातिवाद’ ज्ञानमीमांसा से सम्बन्धित विषय है। ज्ञान दो प्रकार का है - सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान। इनमें से ‘ख्यातिवाद’ का सम्बन्ध मिथ्याज्ञान से है। मिथ्याज्ञान भी तीन प्रकार का है - संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय। इनमें से भी ख्यातिवाद का सम्बन्ध मात्र विपर्ययज्ञान से है। विपरीत एक कोटि का निश्चय विपर्ययज्ञान कहलाता है। जैसे रस्सी में सर्प का अथवा सीप में चाँदी का ज्ञान होना

विपर्ययज्ञान है। ख्याति का अर्थ होता है - प्रसिद्धि। ख्यातिवाद का मूलभूत विचारणीय विषय यही है कि इस विपर्ययज्ञान में किसकी प्रसिद्धि होती है? सत् की, असत् की, दोनों की अथवा किसी की नहीं? बस, इसी प्रश्न का उत्तर विभिन्न दार्शनिकों ने अपने-अपने दृष्टिकोणों से पृथक्-पृथक् दिया है। फलस्वरूप इस विषय में अनेक वाद निर्मित हो गये हैं। यथा - अख्यातिवाद, असत्ख्यातिवाद, प्रसिद्धार्थख्यातिवाद, आत्मख्यातिवाद, अनिर्वचनीयार्थख्यातिवाद, विवेकाख्यातिवाद या स्मृतिप्रमोषवाद और विपरीतार्थख्यातिवाद। 'ख्यातिवाद' के प्रकरण में आचार्य प्रभाचन्द्र ने इन सभी मतों की गम्भीर समीक्षा प्रस्तुत की है। यथा -

1. अख्यातिवाद -

चार्वाक कहते हैं कि विपर्ययज्ञान अख्यातिरूप होता है, क्योंकि उसमें किसी की भी ख्याति (प्रसिद्धि) नहीं होती। उनके अनुसार विपर्ययज्ञान निरावलम्बन होता है, उसका कोई आलम्बन नहीं होता। अर्थात् जब हमें सीप में चाँदी अथवा मरीचिका में जल का ज्ञान होता है तब उस ज्ञान का विषय न तो सीप होता है और न ही चाँदी, अथवा न तो मरीचिका होती है और न ही जल। अतः विपर्ययज्ञान अख्यातिरूप होता है।

परन्तु चार्वाक का ऐसा मानना समीचीन नहीं है, क्योंकि यदि विपर्ययज्ञान में किसी भी पदार्थ की ख्याति नहीं होती तो उसका 'यह चाँदी है' अथवा 'यह मरीचिका है' अथवा 'यह रस्सी है' - इत्यादि रूप से विशेष कथन सम्भव नहीं होता, जो होता ही है; तथा विपर्ययज्ञान निरावलम्बन नहीं है, क्योंकि उसमें प्रतिभासित होनेवाला पदार्थ उसका आलम्बन होता है। जैसे - जब सीप में चाँदी का विपर्ययज्ञान हो तब उसका आलम्बन चाँदी है और वहाँ उस चाँदी की स्पष्टतया ख्याति हो रही है।

अतः विपर्ययज्ञान को अख्यातिरूप मानना तर्कसंगत नहीं है।

2. असत्ख्यातिवाद -

सौत्रान्तिक और माध्यमिक (बौद्ध दार्शनिक) कहते हैं कि विपर्ययज्ञान असत्ख्याति रूप होता है क्योंकि उसमें असत् - अविद्यमान अर्थ की ख्याति (प्रसिद्धि) होती है। जैसे - सीप में चाँदी का ज्ञान हुआ वहाँ चाँदी स्पष्ट ही असत् अर्थ है, अविद्यमान अर्थ है और उस असत् या अविद्यमान अर्थ की ख्याति करानेवाला होने से विपर्ययज्ञान असत्ख्याति-रूप है।

परन्तु उनका यह कथन भी समीचीन नहीं है, क्योंकि विपर्ययज्ञान में प्रतिभासित होनेवाला अर्थ सर्वथा असत् नहीं होता। यदि सर्वथा असत् अर्थ का भी प्रतिभास होता हो तो आकाश-पुष्प आदि का भी हो, जो कथमपि नहीं होता। तथा यदि देखा जाए तो यह कथन ही कि 'असत् की ख्याति होती है' - पूर्वापरविरोधयुक्त है। असत् भी है और उसकी ख्याति भी होती है - यह कैसी विरुद्ध बात?

अतः विपर्ययज्ञान को असत्ख्याति-रूप मानना भी युक्तिसंगत नहीं है।

3. प्रसिद्धार्थख्यातिवाद -

सांख्य कहते हैं कि विपर्ययज्ञान प्रसिद्धार्थख्यातिरूप होता है, क्योंकि उसमें प्रतिभासित अर्थ सर्वथा प्रसिद्ध (सत् या विद्यमान) होता है। जैसे - सीप में चाँदी का ज्ञान होने पर वहाँ वस्तुतः ही चाँदी विद्यमान होती है। यद्यपि उत्तर काल में वहाँ चाँदीरूप अर्थ उपलब्ध नहीं होता है, तथापि जिस समय उसका प्रतिभास होता है उस समय तो वह सत् (विद्यमान) ही रहता है।

परन्तु सांख्यों का उक्त कथन भी समीचीन नहीं है, मिथ्या ही है; क्योंकि यदि इस प्रकार से सभी ज्ञानों को प्रसिद्ध अर्थ का ग्राहक माना जाए तो फिर कौन ज्ञान भ्रान्त कहलाएगा? सब ज्ञान अभ्रान्त ही कहलाएँगे। तथा इस प्रकार से कौन ज्ञान भ्रान्त और कौन ज्ञान अभ्रान्त - इसकी कोई व्यवस्था ही नहीं बन सकेगी। तथा यदि पूर्वकाल में अर्थ सत् था और उत्तर काल में उसका अभाव हो गया तो वह कैसे हुआ - यह स्पष्ट करना चाहिए, जो नहीं किया जा सकता। तथा यदि प्रतिभासित जलादि अर्थ सत् होते हैं और उत्तर काल में उनका अभाव हो जाता है तो भूमि में आर्द्रता आदि उनके चिह्न तो अवश्य उपलब्ध होने चाहिए थे, क्योंकि जलादि पदार्थों का तत्काल निरन्वय विनाश नहीं देखा जाता।

अतः विपर्ययज्ञान को प्रसिद्धार्थख्याति-रूप मानना भी ठीक नहीं है।

4. आत्मख्यातिवाद -

विज्ञानाद्वैतवादी या योगाचार (बौद्ध) कहते हैं कि विपर्ययज्ञान आत्मख्यातिरूप होता है, क्योंकि उसमें जिस अर्थ का प्रतिभास होता है वह कोई अन्य नहीं, अपितु उस ज्ञान का अपना ही आकार है, परन्तु अनादिकालीन अविद्या के कारण बाह्य अर्थ जैसा प्रतीत होता है।

परन्तु विज्ञानाद्वैतवादी का उक्त कथन भी समीचीन नहीं है, क्योंकि यदि इस प्रकार से सब ज्ञानों को आत्मख्याति रूप ही माना जाएगा तो कोई भी ज्ञान भ्रान्त सिद्ध नहीं होगा, सब ज्ञान अभ्रान्त ही सिद्ध होंगे। तथा यदि विपर्ययज्ञान में प्रतिभासित चाँदी आदि पदार्थ आत्मरूप (ज्ञानरूप) ही हैं तो उनकी प्रतीति सुखादि की भाँति अन्तरंग अर्थ रूप से ही होनी चाहिए। बाह्य अर्थ रूप से नहीं होनी चाहिए, जबकि स्पष्ट ही उनकी प्रतीति बाह्य अर्थ रूप से होती है। वस्तुतः आत्मख्यातिवाद तभी समीचीन सिद्ध हो सकता है जब पहले विज्ञानाद्वैतवाद सिद्ध हो जो कथमपि नहीं होता।

अतः विपर्ययज्ञान को आत्मख्याति-रूप मानना भी न्यायसंगत नहीं है।

5. अनिर्वचनीयार्थख्यातिवाद -

ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि विपर्ययज्ञान अनिर्वचनीयार्थख्याति-रूप होता है, क्योंकि उसमें प्रतिभासित अर्थ को सत् भी नहीं कहा जा सकता, असत् भी नहीं कहा जा सकता और उभय भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इन तीनों ही पक्षों में दोष प्राप्त होते हैं। यदि सत् माना जाए तो कोई भी ज्ञान भ्रान्त सिद्ध नहीं होगा, अभ्रान्त ही सिद्ध होंगे; यदि असत् माना जाए तो आकाशपुष्प-आदि भी ज्ञान का विषय होना चाहिए, जो कभी नहीं होता; और यदि उभय रूप माना जाए तो उक्त दोनों ही दोष उपस्थित होंगे। अतः विपर्ययज्ञान को अनिर्वचनीयार्थख्यातिरूप मानना चाहिए।

परन्तु ब्रह्माद्वैतवादियों का उक्त कथन भी समीचीन नहीं है, क्योंकि विपर्ययज्ञान में प्रतिभासित अर्थ कथमपि अनिर्वचनीय सिद्ध नहीं होता। यदि वह वास्तव में अनिर्वचनीय होता तो 'यह चाँदी है' अथवा 'यह रस्सी है' - इत्यादि रूप से कथन कैसे होता है? इससे सिद्ध होता है कि विपर्ययज्ञान में प्रतिभासित अर्थ अनिर्वचनीय नहीं है। दरअसल, विपर्ययज्ञान को अनिर्वचनीयार्थख्यातिरूप मानने के पीछे ब्रह्माद्वैतवादियों की भावना अनिर्वचनीय ब्रह्माद्वैत के प्रतिपादन व समर्थन की है, परन्तु वह ब्रह्माद्वैत किसी भी प्रमाण से सिद्ध नहीं होता, जो एक पृथक् विषय है और स्थानाभाव के कारण यहाँ नहीं लिखा जा सकता।

इस प्रकार विपर्ययज्ञान को अनिर्वचनीयार्थख्यातिरूप मानना भी युक्तिसंगत नहीं है।

6. विवेकाख्यातिवाद या स्मृतिप्रमोषवाद -

प्रभाकर (मीमांसक) कहते हैं कि विपर्ययज्ञान विवेकाख्याति या स्मृतिप्रमोष रूप होता है, क्योंकि उसमें दो ज्ञानों में विवेक (भेद) की अख्याति या पूर्वदृष्ट अर्थ की

स्मृति का प्रमोष (चोरी) देखा जाता है। उनके अनुसार विपर्ययज्ञान में वस्तुतः दो ज्ञान होते हैं। एक ज्ञान तो सामने स्थित अर्थ का प्रतिभास रूप होता है और दूसरा पूर्वदृष्ट पदार्थ का सादृश्यादि के कारण स्मृतिरूप होता है। जैसे - जब हमें सीप में 'यह चाँदी है (इदम् रजतम्)' - ऐसा ज्ञान होता है तब वहाँ वास्तव में एक ज्ञान नहीं होता है, अपितु दो ज्ञान होते हैं - एक तो 'यह (इदम्)' पद से प्रकट होनेवाला प्रत्यक्ष ज्ञान और दूसरा 'चाँदी (रजतम्)' पद से प्रकट होनेवाला ज्ञान, जो स्मरण-रूप होता है। वहाँ ज्ञाता पुरुष प्रत्यक्ष और स्मृति - इन दो ज्ञानों में भेद नहीं जान पाता, अतः यह विवेकाख्याति रूप है। अथवा सामने स्थित अर्थ के लिए स्मृति करते हुए भी उसे स्मृति नहीं कहता, स्मृतिप्रमोष है। विपर्ययज्ञान ऐसा विवेकाख्याति या स्मृतिप्रमोष रूप ही होता है।

परन्तु प्राभाकारों का उक्त मत भी समीचीन नहीं है, क्योंकि विपर्ययज्ञान में प्रत्यक्ष और स्मरण - ये दो ज्ञान नहीं होते, अपितु एक ही ज्ञान होता है - विपरीत अर्थ को जाननेरूप। तथा जिसे वे सादृश्यादि के निमित्त से हुआ स्मृतिप्रमोष कह रहे हैं वह वस्तुतः विपरीतार्थख्याति ही है।

7. विपरीतार्थख्यातिवाद -

जैन और नैयायिक-वैशेषिक कहते हैं कि विपर्ययज्ञान विपरीतार्थख्याति-रूप होता है, क्योंकि उसमें विपरीत अर्थ की ख्याति होती है। अर्थात् सादृश्यादि कुछ कारणों से सीप में उसके विपरीत अर्थ चाँदी का ज्ञान हो जाता है अथवा मरीचिका में उसके विपरीत जल का ज्ञान हो जाता है। अतः विपर्ययज्ञान को विपरीतार्थख्याति-रूप ही मानना चाहिए।

जैनों और नैयायिक-वैशेषिकों का उक्त कथन न्यायसंगत है। विपर्ययज्ञान को विपरीतार्थख्याति-रूप मानने में कोई बाधा नहीं है।

शंका - सीप में चाँदी के विपर्ययज्ञान का आलंबन क्या है? सीप या चाँदी? यदि सीप है तो उसे सत्ख्याति रूप कहिये और यदि चाँदी है तो उसे असत्ख्याति रूप कहिये। यह विपरीतार्थख्याति क्या होता है?

समाधान - सीप में चाँदी के विपर्ययज्ञान का आलंबन चाँदी ही है, सीप नहीं; क्योंकि यदि उसका आलंबन सीप होता तो वह विपर्ययज्ञान नहीं कहलाता। परन्तु उसका आलंबन चाँदी होते हुए भी उसे असत्ख्याति-रूप नहीं माना जा सकता क्योंकि

यदि असत् अर्थ की भी ख्याती होती हो तो आकाशपुष्पादि की भी होनी चाहिए। अतः ऐसी स्थिति में यही मानना उचित है कि विपर्ययज्ञान में विपरीत अर्थ (सीप से विपरीत चाँदी है, रस्सी से विपरीत सर्प है, इत्यादि) की ख्याति होती है। विपर्ययज्ञान का नाम विपरीतार्थख्याति रूप होने के कारण ही विपर्ययज्ञान है।

अध्यक्ष, जैनदर्शन विभाग
श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ,
(मानित विश्वविद्यालय),
नई दिल्ली-110 016

□ □ □

